पहला हिन्दी सस्करण
जनवरी, १९५७

दूसरा सशोधित हिन्दी सस्करण
जून, १९६१

तीसरा सशोधित हिन्दी सस्करण
दिसम्बर, १९६५

बगला मे देवीप्रसाद चटोपाध्याय
द्वारा सपादित

अनुवादक
युगजीत नवलपुरी

मूल्य : २ रुपया 51 NP

टी पी. सिनहा द्वारा न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस, रानी झासी रोड, नई दिल्ली मे मुद्रित और उन्ही के द्वारा पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा) लिमिटेड, रानी झासी रोड, नई दिल्ली से प्रकाशित।



डारविन

एक

एक था लडका ।

स्कूल में उसका मन जरा भी नही लगता था । मौका पाते ही वह पिजरे को पारकर निकल भागता ।

पिजरा माने वही बोर्डिग स्कूल, जहां उसके बापू ने उसे पढ़ने-लिखने के लिए भेजा था । बोर्डिग स्कूल में कभी-कभी ऐसे मौके आ ही जाते, जब बाहर निकलने की सुविधा मिल जाती । सुविधा मिलते ही वह लडका घर की ओर रवाना हो जाता । स्कूल से उसका घर कोई मील भर का रास्ता पार करने पर था ।

इतना 'घरमुहा मन' क्यो था उस चार्ल्स का ?

चार्ल्स का मन असल में घर पर नही, बल्कि घर की ओर जानेवाले रास्ते पर टंगा रहता था ।

स्कूल की पढाई मे मन क्यो नही लगता था ?

इसलिए कि उस स्कूल मे जो भाषा सिखायी जाती थी, वह मरी हुई भाषा थी । उस भाषा में अब

कोई आदमी बात नही करता । जिन देशों के इतिहास-भूगोल वहां पढाये जाते थे, वे देश भी अब दुनिया के मानचित्र पर नही हैं । इनके अलावा एक क्लास ऐसा भी होता था, जिसमे कविता लिखना सिखाया जाता था । लेकिन उसमें रस का लेश भी नही था । बटलर साहब के उस स्कूल में मजा नही था । थी वहा कोई चीज तो बस बेतो की धमकी ।

ऐसी बात नही कि चार्ल्स बिलकुल ही बुद्धू लड़का हो । नही, बहुत सारी बाते समझता था वह । फांकी-बाज भी नही था । कक्षा में हमेशा हाजिर रहता ।

मखमल जैसी हरी घास से ढका मैदान । मैदान में भेड़े चरती, गाय-गोरू चरते, सुअर चरते, भांति-भांति के जानवर चरते वहां । उनके भांति-भाति के रंग होते और भाति-भांति के रोये होते उनकी देह पर । हो सकता है कि स्कूल के सब लडके इन चीजो को बारीकी से न देखते हो । लेकिन चार्ल्स जरूर देखता था । बारीकी से जो कुछ वह देखता, उसे गाठ बांधकर रखने की कोशिश करता ।

उस मैदान के छोर पर थी एक नदी । नदी किनारे था एक वन । वन मे नाना जाति के पेड़ थे । भाति-

भाति के फूल खिला करते थे वहा। न जाने कितनी तरह के फल लगते। चार्ल्स इन सारी चीजों को देखता हुआ भटकता रहता। वह देखता कि पेड़ यद्यपि एक ही जाति के है, फिर भी ऐसा जान पडता है कि वे सब एक जैसे नही है। कही किसी के फूल किसी और ढाचे के है तो किसी के फल किसी और बनावट के। उसी जाति के पेड़ अगर जगलो मे उगे-उपजे है, तो उनके स्वाद और उनकी गध का क्या पूछना! ओह, कितने मीठे फल होते है उनके! कितनी मोहक सुगधि होती है उनकी।

वन मे न जाने कितनी तरह की चिडिया थी। भाति-भाति की चिडिया। जाति-जाति की चिडिया। रग-बिरगी बहुत-सी तितलिया। अजीब-अजीब आकारो और अजीब-अजीब स्वभावो के कीट-पतगे।

ये सारी चीजे वैसे तो सभी लोग देखते है। लेकिन देखते है ऊपर ही ऊपर। मुग्ध होकर देखते रह जाते है।

चार्ल्स भी मुग्ध होकर देखता। पर वह देखता एक-एक बात को बडे ध्यान से। एक-एक बात को खुरच-खुरच कर देखता। वह देखता, पर केवल देखने के लिए नही, सीखने के लिए भी देखता। जो बारीक

से बारीक अन्तर उनमें होता, उसे भी वह ध्यान में रखता। कुछ भी नया अगर दिख जाता, किसी भी अद्‌भुत चीज पर नजर पड जाती, तो उसे जेब मे डाल लेता और घर ले आता। कीड़े-मकोडे, तितली-पतंगे, सीप-कौडिया, तरह-तरह के पत्थर, खनिज वस्तुए, धातुए, सील-मुहर, सिक्के-मुद्राएं—सभी कुछ !

और फिर, वह लिखता। सारी बाते यो तो याद रखी नही जा सकती न ? इसलिए जो भी नयी बात सूझती वह लिख लेता। इस तरह पोथियो पर पोथिया लिख डाली उसने।

स्कूल की किताबो में चार्ल्स का मन नही लगता था। फिर भी मन लगाना ही पडता। स्कूल की किताब पढना खतम करके चार्ल्स कोई और किताब खोलकर बैठ जाता। बाहरी किताबो मे उसका मन डूब जाता। पढ़ते-पढ़ते वह तन्मय हो जाता।

ये किताबे—बाहरी किताबे—कौन सी थी ? ये थी जीव-जन्तुओ की किताबे, पेड-पौधो की किताबे, देश-विदेश घूमनेवालो की किताबे। चार्ल्स की सबसे मनपसंद की किताब थी एक "दुनिया के आश्चर्य" ("वनडर्स आफ द वर्ल्ड")। वह अक्सर इसी किताब को खोले बैठा रहता। सगी-साथियो को इस किताब

की बाते सुनाया करता। इस किताब को पढ़कर चार्ल्स का मन होता कि वह भी जहाज पर बैठकर दूर देशों की सैर को निकल जाय।

आखिर एक दिन उसकी यह इच्छा पूरी हुई।

इन सब किताबों के अलावा एक और किताब थी जिसे पढ़ना चार्ल्स बहुत पसंद करता था। वह किताब थी उकलैदिस की ज्यामिति। हां, शेक्सपीयर के ऐतिहासिक नाटको को पढना भी उसे बहुत पसंद था। बोर्डिंग स्कूल की बड़ी खिड़की के पास बैठे-बैठे शेक्सपीयर के नाटक और स्टॉक तथा बायरन की कविताए पढते वह घटों गुजार देता। इसमें जरा भी थकान नही होती थी उसे।

मछली पकडना भी उसे बहुत अच्छा लगता था। नदी या तालाब के किनारे बंसी डाले वह घटों बैठा रहता।

और शिकार का क्या पूछना? शिकार की बात चलते ही चार्ल्स को मानो पख लग जाते।

उस पर शिकार का नशा सवार होता, तो रात को सोते समय जूते-टोपी सिरहाने रख लेता, ताकि सुबह आख खुलते ही बदूक कधे पर लटकाकर निकल जा सके।

से वारीक अन्तर उनमे होता, उसे भी वह ध्यान में रखता। कुछ भी नया अगर दिख जाता, किसी भी अद्‌भुत चीज पर नजर पड जाती, तो उसे जेब मे डाल लेता और घर ले आता। कीडे-मकोड़े, तितली-पतंगे, सीप-कौड़िया, तरह-तरह के पत्थर, खनिज वस्तुए, धातुए, सील-मुहर, सिक्के-मुद्राए—सभी कुछ !

और फिर, वह लिखता। सारी बाते यो तो याद रखी नही जा सकती न ? इसलिए जो भी नयी बात सूझती वह लिख लेता। इस तरह पोथियो पर पोथिया लिख डाली उसने।

स्कूल की किताबो मे चार्ल्स का मन नही लगता था। फिर भी मन लगाना ही पडता। स्कूल की किताब पढ़ना खतम करके चार्ल्स कोई और किताब खोलकर बैठ जाता। बाहरी किताबों मे उसका मन डूब जाता। पढ़ते-पढ़ते वह तन्मय हो जाता।

ये किताबे—बाहरी किताबे—कोन सी थी ? ये थी जीव-जन्तुओ की किताबे, पेड-पौधो की किताबे, देश-विदेश घूमनेवालो की किताबे। चार्ल्स की सबमे मनपसंद की किताब थी एक . "दुनिया के आश्चर्य" ("वनडर्स आफ द वर्ल्ड")। वह अक्सर इसी किताब को खोले बैठा रहता। सगी-साथियो को इस किताब

की बाते सुनाया करता। इस किताब को पढ़कर चार्ल्स का मन होता कि वह भी जहाज पर बैठकर दूर देशों की सैर को निकल जाय।

आखिर एक दिन उसकी यह इच्छा पूरी हुई।

इन सब किताबों के अलावा एक और किताब थी जिसे पढ़ना चार्ल्स बहुत पसंद करता था। वह किताब थी उकलैदिस की ज्यामिति। हा, शेक्सपीयर के ऐतिहासिक नाटको को पढना भी उसे बहुत पसंद था। बोर्डिंग स्कूल की बडी खिड़की के पास बैठे-बैठे शेक्सपीयर के नाटक और स्टॉक तथा बायरन की कवि-ताएं पढते वह घटों गुजार देता। इसमें जरा भी थकान नही होती थी उसे।

मछली पकडना भी उसे बहुत अच्छा लगता था। नदी या तालाब के किनारे वगी डाले वह घटों बैठा रहता।

और शिकार का क्या पूछना? शिकार की बात चलते ही चार्ल्स को मानो पंख लग जाते।

उस पर शिकार का नशा सवार होता, तो रात को सोते समय जूते-टोपी सिरहाने रख लेता, ताकि सुबह आख खुलते ही बदूक कधे पर लटकाकर निकल जा सके।

एक ओर शौक था उसे। पैदल या घोडे पर सवार होकर अकेले घूमना-फिरना। इगलैड मे वेल्स नामक एक जगह है। वहा की प्राकृतिक छटा देखते ही बनती है। एक बार घोडे पर सवार होकर चार्ल्स वेल्स की सरहदो का चक्कर लगा आया। उस भ्रमण की याद चार्ल्स जीवन भर नही भुला सका।

एक मजेदार बात और बता दू।

एक बार तो चार्ल्स के लिए स्कूल जाना ही असभव हो गया। क्लास मे उसे देखते ही लडके चिल्ला उठते "यह रहा गैस! यह रहा गैस!" चार्ल्स परेशान हो उठता।

बात क्या थी? इसके पीछे एक कहानी है।

चार्ल्स के एक बडे भाई थे। वह कालेज मे पढते थे। पता नही उनके मन मे क्या झक्क उठी कि एक बार उन्होने अपने बगीचे मे, औजार-पाती रखने के घर मे, एक छोटी प्रयोगशाला सजा डाली। आला ठाट से सजी-धजी एक रसायनिक प्रयोगशाला। उसमे वह भाति-भाति के रसायनिक प्रयोग किया करते थे। कभी वह गैस बनाते, कभी किसी पदार्थ मे कोई पदार्थ मिलाते और तरह-तरह की यौगिक रसायनिक वस्तुए तैयार करते।

चार्ल्स के भाग्य जागे। भैया ने उसे काम में हाथ बटाने के लिए बुला लिया। हाथ बटाना माने कोई बड़ा काम नही, बल्कि यही छोटे-मोटे टहल-टिकोरे 'यह उठाओ !' 'वह रखो !' 'यह लाओ !' 'वह ले जाओ !' आदि-आदि। चार्ल्स इतने में ही कृतार्थ हो उठा। वह फूला नही समाया। भैया उसे अपने हाथो काम न भी करने दे, पर अपनी आखो से वह सारे गोरख-धधे तो देख ही सकता था ! इसमे कोई शक नही कि भैया अगर छोटे भाई का उत्साह और आग्रह देख लेते तो अपने हाथों काम करने की उसे इजाजत भी दे देते। ऐसा अनेक बार हुआ भी। घर के और सभी लोग गाढ़ी नीद मे सोते रहते और ये दोनो भाई प्रयोगशाला के अन्दर बहुत रात गये तक प्रयोग करते रहते, यानी गैस बनाते रहते ! मुहा-मुही बात फैल गयी। स्कूल के लडको को चिढाने का मौका मिल गया। वे उसे देखते ही कहते "यह रहा गैस, यह रहा गैस !"

बात हेडमास्टर साहब के कानो तक पहुची। उन्हे यह सब बाते पसद नही थी। भरे क्लास मे उन्होने लड़को के सामने चार्ल्स को फटकारा "बावला कही का ! पढ़ना-लिखना छोड अट-शट कामो मे समय बर-बाद करता है ?"

बच्चे की मति-गति देखकर पिताजी ने भी पता नही क्या सोचा कौन जाने ? उन्होने चार्ल्स का स्कूल जाना छुडवा दिया और एडिनबरा के विश्वविद्यालय में डाक्टरी पढने को दाखिल करा दिया ।

दो

दार्शनिक इराजमस डारविन के पोते, सुप्रसिद्ध डाक्टर रॉवर्ट डारविन के सुपुत्र, चार्ल्स डारविन सन १८२४ मे डाक्टर बनने के लिए एडिनबरा चले।

आंखे मूदकर मन ही मन हम सवा सौ या डेढ़ सौ बरस पहले के इंगलैंड मे, चार्ल्स डारविन के लड़कपन और जवानी के दिनो के इंगलैंड मे, जा पहुचे तो हम देखेगे कि पूरे देश में उत्तेजना और उथल-पुथल मची थी।

उत्तेजना ?

यही कि . जानना चाहिए। लोगो ने निश्चय कर लिया कि अब सब कुछ जान कर ही दम लेगे। जल-थल और आकाश के सारे भेद जान लेगे। घर-बार छोडकर, समुद्रो को लाघकर, नदियो, पातरो, मरु-भूमियो को पारकर सब-कुछ उलट-पलट कर समझ बूझ लेगे, हर चीज का वारीक से वारीक भेद खुरचकर

निकाल लेगे। आदमी की जानकारी की सीमा के वाहर कुछ भी नही वच पायेगा।

इंगलैंड मे यह नशा किसलिए था ?

इसलिए कि उन दिनों का इगलैंड पूरी दुनिया जीत लेना चाहता था। गवई-गंवार इगलैंड अव शहरी इगलैंड वन चुका था। शहरो मे आसमान तक सिर उठाये वड़े-वडे कारखानों की चिमनियां उठ खड़ी हुई थी। कही सूती कपड़े का कारखाना था, तो कही ऊनी कपडे का। कही लोहे-इस्पात का, तो कही रेल के इजन वनाने का। कही मास का, तो कही जहाज वनाने का।

मशीनो के चक्के अविराम घूमते रहते और अविराम यही शोर मचाते रहते हमे चाहिए! और चाहिए! और रसद चाहिए! और खूराक चाहिए। और रुई चाहिए, और ऊन चाहिए। कपडो के थान वना वनाकर हम पहाडो जैसे ढेर लगा देगे। हमे और लोहा दो और इस्पात दो! हम वहुत सारी रेलगाडिया, वहुत सारे जहाज वना डालना चाहते हे!

मशीनो की मागो का न कोई ओर था, न छोर।

इसीलिए इगलैंड वालो को अपने देश के चप्पे-चप्पे की खाक छान डालनी पडी। वन-जगल, पातर-पहाड, नदी-समुद्र, सव ढूढ डाले। लोगो को अधेरी खानो में

उतरना पड़ा। अतल समुद्र की छाती पर पाले उडा
पड़ी। "देखो-देखो ! ढूढो-ढूढ़ो !" की गोहार म
गयी। "देखो-देखो ! नजर गडाकर देखो। जहा से भी,
जो भी रसद कल-यन्त्रों के लिए मिले, उठा लाओ !"

उन दिनो इगलैंड के सिर पर नयी-नयी बाते जानने का भूत सवार था। नयी-नयी बाते जानने का, जान लेने के बाद उन्हे बस मे करने का और हासिल करने का, फिर उन्हे अपने काम मे लाने का। मिसाल के लिए, ऊन की माग बढी। ऊन के लिए भेडों की तादाद बढी। भेड़े चरे कहां ? खेती की जमीने घेर-घार कर चरागाहे बनी। अब जाच-पडताल शुरू हुई कि किस-किस जाति की भेडो की देह पर अधिक ऊन होता है। बस, छाट-छांट कर उन्ही जातियो की भेडे रखी जाने लगी। इन जातियो का वश बढाने के उपाय किये जाने लगे।

पूरे देश में यही मत्र जपा जाने लगा · देखो। जानो। देख जान कर काम मे लगाओ !

शहरो का यह हो-हल्ला अभी गावो मैं नही पहुचा
ा। गावो मे जीवन अभी भी पुरानी चाल से चल
हा था। हा, गाव का छोकरा चार्ल्स गाव मे रहते
भी, अपने स्वभाव के कारण देखने-जानने की इस

धूम-धाम में खिच आया था। मास्टर की धमकिया, लडकों की टिटकारियां और वापू का उदास चेहरा—कोई वाधा उसके स्वभाव के खिचाव को नही रोक सकती थी।

तीन

विश्वविद्यालय के नगर एडिनबरा मे आकर इस लड़के पर डाक्टर बनने की धुन सवार हुई।

आजकल की तुलना में डाक्टरी-विद्या उन दिनो बहुत पिछडी हुई थी। अपने हाथों जाच-परख कर सीखने की कला अभी शुरू नही हुई थी। चुपचाप बैठे-बैठे अध्यापक का एकसुरा और नीरस भाषण सुनना ही विद्यार्थियो का काम था। हाथों की डाक्टरी कला सीखने के नाम पर कुछ करना पड़ता था तो यही कि सामने खडे-खडे रोगी की चीर-फाड देखते रहो। डारविन दो बार चीर-फाड़ घर मे घुसे। अब तक क्लोरोफार्म का आविष्कार नहीं हुआ था। चीर-फाड़ की असह पीडा से रोगी चीख-चीख उठते थे। एक बार एक छोटे लडके के आपरेशन (चीर-फाड) के समय डारविन भी उपस्थित थे। लडके का मर्मभेदी चीत्कार सुनकर डारविन खडे न रह सके, बेचैन होकर वह उसी

क्षण चीर-फाड घर से निकल भागे। तीसरी वार उन्होने उस ओर नही झांका।

डाक्टरी पढने मे उनका मन नही लगता था, लेकिन पिता जी का मन तो रखना ही था। इसलिए डारविन नियमित रूप से क्लास में उपस्थित रहते थे। सच पूछो तो उनकी असली पढाई—उनका असली क्लाश—कॉलेज से वहुत दूर, समुद्र के किनारे, मछेरों की वस्ती मे, हुआ करता था। मछेरे शख-सीप आदि के लिए समुद्र में नावे डालते तो, उनसे दोस्ती गाठकर डारविन भी मछेरी-नावो (ट्रालरो) पर जा वैठते। जाल में आये नाना जाति के समुद्री जीव-जन्तुओ के नमूने अपने साथ लिये वह घर लौटते। घर लौटकर उन नमूनो को वह काटते-कूटते और अणुवीक्षण-यत्र (खुर्दवीन) के तले रखकर उनकी वारीकी से जाच-परख करते।

एडिनवरा मे डारविन को कई मनचीते मित्र मिल गये। वे भी उन्ही की तरह प्रकृति-खोजी थे। इनमें से कुछ के नाम ये है एडमवर्थ—इनका अनुराग भूतत्व-विद्या मे था, कोल्डस्ट्रीम—यह प्राणि-विद्या का शौक रखते थे, हार्डी—इन्हे वनस्पति-विज्ञान की चाट पडी हुई थी, ग्राट—यह भी प्राणि-विद्या के शौकीन थे।

इन लोगों से बात-चीत और बहस-मुबाहसे में ही डारविन का बहुत सा समय बीतता था। वह अनेक नयी बाते सुनते, नयी बातो पर सोचते-विचारते और फिर उन पर लेख लिखते।

ग्रांट और कोल्डस्ट्रीम का झुकाव समुद्री जीव-जन्तुओं की खोज की ओर ज्यादा था। अक्सर वे आवश्यक नमूने जमा क़रने के लिए समुद्र के किनारे जाया करते थे। डारविन उनका साथ कभी न छोडते।

उन दिनों एडिनबरा मे एक समिति थी: "प्लिनियन सोसायटी"। विश्वविद्यालय के एक तहखाने मे ही इस समिति की बैठके हुआ करती थी। बैठकों मे विद्यार्थी और अध्यापक प्रकृति विज्ञान के विविध विषयो पर लेख पढते और इन लेखों पर बहस करते।

डारविन भी इस समिति के सदस्य बन गये। वह इसकी बैठको मे नियमित रूप से भाग लेने लगे। यहा उन्होने दो-एक निबंध भी पढे।

डाक्टर रॉबर्ट डारविन निराश हो गये। उन्होने सोचा था कि सभवत इस लड़के की प्रवृत्ति वैज्ञानिक है। इसीलिए उन्होने उसे डाक्टरी पढ़ने के लिए भेजा था। डाक्टरी भी तो एक विज्ञान ही है न!

लेकिन सब-कुछ देख-सुन लेने और धोखा खा

चुकने के बाद उन्होंने समझ लिया कि विज्ञान का इस लडके की प्रवृति से मेल नही खाता। अस्तु, उन्होने फैसला किया कि चार्ल्स कैम्ब्रिज जाय और वहा पादरी बनानेवाले कालेज में भर्ती हो जाय।

बडा अचम्भा होता है यह जानकर कि डारविन ने इस पर कोई आपत्ति नही की। आपत्ति क्यो नही की, यह सोचकर बुढापे मे खुद उन्हे हसी आ जाती। कारण, एक दिन ऐसा भी आया जब पूरे इंगलैंड का पादरी-सम्प्रदाय डारविन के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। लेकिन यह कहानी बाद मे।

सन १८२८ मे डारविन कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में दाखिल हो गये।

पिछले दो बरस जिस तरह एडिनबरा मे कटे थे, कैम्ब्रिज में भी तीन बरस लगभग उसी तरह कटे। यहां भी कॉलेज के भाषण उसी तरह सीमित-सकुचित, वैसे ही ऊब-भरे और एकसुरे होते थे। यहा भी भाषणो मे डारविन का मन न लगता। यहा भी पैदल या घोड़े पर देश घूमने या शिकार खेलने की बात उठते ही वह बेचैन हो उठते। यहा भी वैज्ञानिको के घर आना-जाना, बातचीत और बहस-मुबाहसे करना जारी रहा। यहा भी विज्ञान-विषयक भाषणो को सुनने का वही

सिलसिला जारी रहा। यहा भी वह विज्ञान की नयी-नयी किताबे पढ़ते रहे, लेख-प्रबध आदि लिखते रहे, वनो-जगलो मे घूमते रहे, कीड़े-मकोडे और तितली-पतगे जमा करते रहे।

कीडे पकडने की एक कहानी याद आ रही है।

एक दिन डारविन जगल में घूम रहे थे। एक अजीब तरह के कीड़े पर नजर पड गयी। एक पर नही, वल्कि एक जोड़े पर। दोनो हाथों से दोनों को पकड़ लिया। इतने मे एक तीसरा भी उड़ता हुआ आ पहुंचा। इसको भी छोडना ठीक नही था। लेकिन पकडा जाय तो कैसे? दोनों हाथो मे तो एक-एक कीड़ा पहले से ही था। डारविन ने किया यह कि दाहिने हाथ वाले कीडे को मुह मे रख लिया और तीसरे कीड़े को पकड़ने लपके। लेकिन तीसरा इतनी आसानी से पकड़ मे आने वाला नही था। वह भी चालाकी खेलने लगा। इधर मुह के अन्दर का कीडा जहर डालने लगा। जीभ जल उठी। यत्रणा से व्याकुल डारविन ने मुह के कीड़े को थूक दिया। तव तक मौका पाकर तीसरा कीड़ा भी लापता हो गया।

इस तरह के सग्रह के पीछे तो वह दीवाने थे ही, ऊपर से दो नये शौको का और चसका लग गया।

एक शौक था : चित्रालयो मे जाकर चित्र देखने का, एकाध चित्र खरीद लेने का और चित्रो के बारे मे लिखी गयी किताबे पढने का। दूसरा शौक था गाने-बजाने के जलसो मे बैठकर सगीत सुनने का।

यहा हेनसलो वाली बात बता देना जरूरी है। वरना समझो डारविन के कैम्ब्रिज-जीवन के बारे मे कुछ कहा ही नही।

हेनसलो थे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय मे वनस्पति शास्त्र के अध्यापक। वैसे तो उनका विशेष विषय था वनस्पति-शास्त्र ही, लेकिन प्रकृति-विज्ञान के प्रत्येक विषय मे उनकी अच्छी दखल थी। सप्ताह मे एक दिन उनके घर के दरवाजे सबके लिए खुले रहते। जिस किसी को विज्ञान से प्रेम हो, वह निस्सकोच वहा जा सकता था। सभा सी लग जाती वहा। नाना विषयो पर बहस-मुबाहसे होते। लेख पढे जाते। इन बैठको मे भाग लेने के लिए डारविन को भी बुलाया गया। धीरे-धीरे डारविन का वहा आना-जाना खूब बढ चला और डारविन अध्यापक महोदय के अत्यत प्रिय पात्र बन गये। वह टहलने निकलते तो डारविन को भी अपने साथ ले लेते। रास्ते मे चलते-चलते गुरु-चेले मे विज्ञान के नाना विषयो पर बातचीत होती

चलती। कभी-कभी तो घर लौटते-लौटते एकदम साझ हो जाती। फिर तो हेनसलो साहब, अपने चेले को घसीटते लाते। खाने की मेज पर ला बैठाते। बिना कुछ खिलाये-पिलाये किसी भी हालत में जाने न देते।

कैम्ब्रिज-जीवन के वर्ष इसी तरह बीतने लगे। अध्यापक हेनसलो के आदेश के अनुसार डारविन कैम्ब्रिज जीवन के अतिम वर्षो मे भूतत्व-विद्या (जियॉलाजी) का विशेष रूप से अध्ययन करने लगे। अमली ढग से भूतत्व-विद्या सीखने का एक सुयोग भी मिल गया। अध्यापक सेजविक उन दिनो एक नामी भूतत्व-वेत्ता थे। उत्तरी वेल्स के पहाडी इलाको की भूतात्विक यात्रा पर निकलने की बात वह सोच रहे थे। अध्यापक हेनसलो के अनुरोध पर सेजविक महोदय डारविन को अपना यात्रा-साथी वनाने के लिए राजी हो गये। डारविन ने आखो से देखकर और हाथो से परखकर वहुत-सी वाते सीखी। जैसे, उन्होने सीखा कि किसी देश को कैसे पहचाना जाता है, भाति-भाति की मिट्टियो की अलग-अलग किस्मो को कैसे जाना जाता है, विविध स्तरो की मिट्टी को कैसे पहचाना जाता है, किस स्तर की उम्र कितनी है इसका हिसाव कैसे लगाया जाता है, इत्यादि, इत्यादि।

चलती । कभी-कभी तो घर लौटते-लौटते एकदम साझ हो जाती । फिर तो हेनसलो साहब, अपने चेले को घसीटते लाते । खाने की मेज पर ला बैठाते । बिना कुछ खिलाये-पिलाये किसी भी हालत मैं जाने न देते ।

कैम्ब्रिज-जीवन के वर्ष इसी तरह बीतने लगे। अध्यापक हेनसलो के आदेश के अनुसार डारविन कैम्ब्रिज जीवन के अतिम वर्षो मे भूतत्व-विद्या (जियॉलाजी) का विशेष रूप से अध्ययन करने लगे। अमली ढग से भूतत्व-विद्या सीखने का एक सुयोग भी मिल गया। अध्यापक सेजविक उन दिनो एक नामी भूतत्व-वेत्ता थे। उत्तरी वेल्स के पहाडी इलाको की भूतात्विक यात्रा पर निकलने की वात वह सोच रहे थे। अध्यापक हेनसलो के अनुरोध पर सेजविक महोदय डारविन को अपना यात्रा-साथी वनाने के लिए राजी हो गये। डारविन ने आखो से देखकर और हाथो से परखकर वहुत-सी वाते सीखी। जैसे, उन्होने सीखा कि किसी देश को कैसे पहचाना जाता है, भाति-भाति की मिट्टियों की अलग-अलग किस्मो को कैसे जाना जाता है, विविध स्तरों की मिट्टी को कैसे पहचाना जाता है, किस स्तर की उम्र कितनी है इसका हिसाव कैसे लगाया जाता है, इत्यादि, इत्यादि ।

एक शौक था : चित्रालयो मे जाकर चित्र देखने का, एकाध चित्र खरीद लेने का और चित्रो के वारे मे लिखी गयी कितावे पढने का। दूसरा शौक था : गाने-वजाने के जलसो मे वैठकर सगीत सुनने का।

यहा हेनसलो वाली वात वता देना जरूरी है। वरना समझो डारविन के कैम्ब्रिज-जीवन के वारे में कुछ कहा ही नही।

हेनसलो थे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय मे वनस्पति शास्त्र के अध्यापक। वैसे तो उनका विशेप विपय था वनस्पति-शास्त्र ही, लेकिन प्रकृति-विज्ञान के प्रत्येक विपय मे उनकी अच्छी दखल थी। सप्ताह में एक दिन उनके घर के दरवाजे सवके लिए खुले रहते। जिस किसी को विज्ञान से प्रेम हो. वह निस्संकोच वहा जा सकता था। सभा सी लग जाती वहा। नाना विपयो पर वहस-मुवाहसे होते। लेख पढे जाते। इन वैठको मे भाग लेने के लिए डारविन को भी वुलाया गया। धीरे-धीरे डारविन का वहा आना-जाना खूव वढ चला और डारविन अध्यापक महोदय के अत्यत प्रिय पात्र वन गये। वह टहलने निकलते तो डारविन को भी अपने साथ ले लेते। रास्ते मे चलते-चलते गुरु-चेले मे विज्ञान के नाना विपयो पर वातचीत होती

एक शौक था . चित्रालयो मे जाकर चित्र देखने का, एकाध चित्र खरीद लेने का और चित्रो के वारे मे लिखी गयी कितावे पढने का। दूसरा शौक था . गाने-वजाने के जलसो में वैठकर सगीत सुनने का।

यहा हेनसलो वाली वात वता देना जरूरी है। वरना समझो डारविन के कैम्ब्रिज-जीवन के वारे मे कुछ कहा ही नही।

हेनसलो थे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय मे वनस्पति शास्त्र के अध्यापक। वैसे तो उनका विशेप विपय था वनस्पति-शास्त्र ही, लेकिन प्रकृति-विज्ञान के प्रत्येक विपय मे उनकी अच्छी दखल थी। सप्ताह में एक दिन उनके घर के दरवाजे सवके लिए खुले रहते। जिस किसी को विज्ञान से प्रेम हो. वह निस्सकोच वहा जा सकता था। सभा सी लग जाती वहां। नाना विपयो पर वहस-मुवाहसे होते। लेख पढे जाते। इन वैठको मे भाग लेने के लिए डारविन को भी वुलाया गया। धीरे-धीरे डारविन का वहा आना-जाना खूव वढ चला और डारविन अध्यापक महोदय के अत्यंत प्रिय पात्र वन गये। वह टहलने निकलते तो डारविन को भी अपने साथ ले लेते। रास्ते मे चलते-चलते गुरू-चेले मे विज्ञान के नाना विषयो पर वातचीत होती

चलती। कभी-कभी तो घर लौटते-लौटते एकदम साझ हो जाती। फिर तो हेनसलो साहब, अपने चेले को घसीटते लाते। खाने की मेज पर ला बैठाते। बिना कुछ खिलाये-पिलाये किसी भी हालत में जाने न देते।

कैंम्ब्रिज-जीवन के वर्ष इसी तरह बीतने लगे। अध्यापक हेनसलो के आदेश के अनुसार डारविन कैम्ब्रिज जीवन के अतिम वर्षो मे भूतत्व-विद्या (जियॉलाजी) का विशेष रूप से अध्ययन करने लगे। अमली ढग से भूतत्व-विद्या सीखने का एक सुयोग भी मिल गया। अध्यापक सेजविक उन दिनो एक नामी भूतत्व-वेत्ता थे। उत्तरी वेल्स के पहाडी इलाकों की भूतात्विक यात्रा पर निकलने की बात वह सोच रहे थे। अध्यापक हेनसलो के अनुरोध पर सेजविक महोदय डारविन को अपना यात्रा-साथी बनाने के लिए राजी हो गये। डारविन ने आखो से देखकर और हाथो से परखकर बहुत-सी बाते सीखीं। जैसे, उन्होने सीखा कि किसी देश को कैसे पहचाना जाता है, भाति-भाति की मिट्टियो की अलग-अलग किस्मो को कैसे जाना जाता है, विविध स्तरो की मिट्टी को कैसे पहचाना जाता है, किस स्तर की उम्र कितनी है इसका हिसाब कैसे लगाया जाता है, इत्यादि, इत्यादि।

यही था डारविन का असली जीवन। लेकिन इस असली जीवन का मतलब यह नही कि वह कॉलेज की पढ़ाई मे ढील देते या उडान ही लगाते रहते। नही, वह पढ़ाई मे भी मन लगाते थे और वहां की परीक्षा में पास भी हो गये।

चार

सन १८३१ । उत्तर वेल्स की यात्रा से डारविन अभी-अभी घर लौटे है। थकी देह को जरा आराम दे रहे है। इतने मे ही एक चिट्ठी मिली "डारविन, दुनिया की सैर करने जाओगे ?"

"हा, अभी !" दुनिया भर मे घूम-फिर आने की साध डारविन मैं न जाने कितने दिनो से थी। तो क्या यह साध पूरी हो जायगी ?

हां, जरूर ! चिट्ठी में अध्यापक हेनसलो ने लिखा था कि "विगुल" नामक कोई जहाज दुनिया का चक्कर लगाने के लिए जानेवाला है। उस जहाज के कप्तान फित्जरॉय अपने कमरे मे एक नौजवान वैज्ञानिक को जगह देने के लिए तैयार है। हा, तनखा-वनखा कुछ नही मिलेगी। अपना सारा खर्च आप ही उठाना होगा। इस शर्त पर अगर राजी हो, तो जा सकते हो।

जाओगे ? पादरी नही बनोगे ?

भाड मे जाय पादरीपन ! डारविन ने जवाब में फौरन ही लिख भेजना चाहा : "हां, मै जाऊंगा।"

लेकिन...

लेकिन लिख नही सके। किसने बाधा डाली ?

पिता जी ने ! डाक्टर रॉबर्ट डारविन ने। उन्होंने साफ-साफ जता दिया कि मै बहुत बरदाश्त कर चुका, मनमानी करके अपने जीवन को बरबाद करते अब तुम्हे और नही देख सकता। लेकिन हा...

हां क्या ?

हां यह कि अगर कोई चतुर ज्ञानी आदमी कह दे कि तुम्हारा जाना उचित है, अच्छा काम है, तो मै जाने देने से इन्कार नही करूंगा।

कापी के पन्ने पर यों ही बैठे-बैठे लकीरे खीचते-खीचते कभी ऐसा भी होता है कि लकीरों में से कोई आश्चर्यजनक चेहरा झाकने लगता है और देखकर तुम खुद हैरत मे रह जाते हो। बस, एकाध लकीर की कमी रह जाती है, ऐसा लगता है कि समझ-बूझकर, हाथ साधकर अगर लकीर खीच दी जाय तो उस तस्वीर मे प्राण भर उठेंगे, वह बोल उठेगी। ठीक ऐसे मे अगर व्यस्त हाथो का झटका खाकर स्याही की

दवात उलट जाय और कापी के पूरे पन्ने को रग दे तो।

कुछ ऐसा ही डारविन के साथ भी हुआ। वह दुख से सूख से गये। अध्यापक हेनस्लो को उन्होंने लिख दिया कि चाहा तो, पर हो नही सका। बापू राजी नही हुए।

लेकिन...

लेकिन, हुए। हो गये राजी। बापू की अनुमति मिल गयी। एक चतुर ज्ञानी आदमी ने आकर उनसे कहा कि ऐसा सुयोग एक बार हाथ से निकल जाने पर फिर वापिस नही आता है? यह बात कही डार-विन के चाचा ने। उनके कानों मे खबर पहुची नही कि उन्होने गाडी जोती और सिर्फ इतनी सी बात कहने के लिए भैया के पास आ पहुचे। चार्ल्स के पिता को अपने भाई की सासारिक व्यवहार बुद्धि पर बडा पक्का विश्वास था। सो, आखिर उन्होने सहमति दे डाली।

भला फिर देर करता है कोई? दूसरे ही दिन डारविन कैम्ब्रिज पहुंचे। अध्यापक के पास। उनसे चिट्ठी ली। जेब मे डाली। और छूटते ही लदन पहुचे—कप्तान फित्जरॉय के पास।

कप्तान को एक खब्त थी। उसकी निगाहे लोगो के चेहरे की एक-एक बारीकी को देखती थी। क्यो? किसलिए? इसलिए कि उसकी धारणा थी कि मुंह की गठन देखकर आदमी के स्वभाव का अन्दाज लगाया जा सकता है।

तो क्या डारविन के चेहरे की गठन मे कप्तान को कुछ मिला?

हा, मिला। डारविन की नाक कुछ चपटी सी थी। कप्तान की धारणा थी कि जिसकी नाक खड़ी न हो, वह आदमी मेहनती नही होता। इसीलिए डारविन को साथ ले चलने मे वह हिचकिचाये। लेकिन फिर न जाने क्या सोचकर, आखिर राजी हो गये।

बातचीत पक्की हो गयी।

अब कोई देर थी तो जहाज के लगर उठाने की।

पाँच

"विगुल" जहाज इगलैड के प्लाइमथ बदरगाह से खुला। सन १८३१। तारीख, २७ दिसम्बर।

केबिन के अपने कोने मे बैठे डारविन एकाग्र मन से कुछ पढ़ रहे हैं। कौन सी किताब है यह? यह है चार्ल्स लॉयक की लिखी "भूतत्व की मूल नीति।" अभी-अभी प्रकाशित हुई है यह।

भगवान वारम्वार पृथ्वी को सिरजते है, फिर उसे प्रलय मे वहा देते हैं और फिर नये सिरे से सिरजते हैं—यही विश्वास था मनुष्य जाति का बहुत दिनो तक।

लॉयक ने कहा कि यह सव बिल्कुल अवास्तविक है। प्रलय की वात निराधार है। विज्ञान की दृष्टि से उन्होने व्याख्या करके समझाया कि पृथ्वी की सृष्टि किस प्रकार हुई है और इसमे जो नाना प्रकार के परिवर्तन और रूपान्तर हुए है, वे किन-किन नियमो के

आधार पर हुए हैं। ये परिवर्तन और रूपान्तर आज भी, हमारी आखो के सामने, होते जा रहे हैं।

उस किताब को पढकर डारविन की आखे खुल गयी। सभी पुरानी गलत धारणाएं उखड गयी।

समुद्र, द्वीप, महाद्वीप, उपद्वीप, प्रायद्वीप, देश, महादेश ! अमरीका, अफ्रीका, एशिया, आस्ट्रेलिया, योरप ! लहरों को चीरता "बिगुल" जहाज बढता रहा। डारविन डेक पर खड़े-खडे आखे फाड़-फाडकर चारों ओर के दृश्य देखते। किसी टापू पर अगर जहाज लंगर डालता तो डारविन वही उतर पड़ते और टापू को देखते-घूमते दूर तक निकल जाते। क्या देखते वह ? वह पेड-पौधे देखते, जीव-जन्तु देखते, उनके कंकाल देखते, उनके पथराये शव देखते, जिन्हे फॉसिल कहते है। वह जो भी देखते खूब ध्यान से देखते, एक-एक बारीकी पर गौर करते हुए देखते—जानकारी की गहराइयो मे उतरते हुए देखते। जो कुछ वह देखते-समझते उसे लिखते भी जाते।

बडी मजेदार चीजो पर डारविन की निगाह पडती।

वह देखते कि एक ही जाति की वनस्पति अफ्रीका के आसपास के द्वीपों में जैसी है, अमरीका के आसपास

के द्वीपो में वैसी ही नही है। जरा और ही तरह की है। डारविन सोचते कि यह अन्तर क्यो है!

किसी देश मे वह देखते कि कोई जानवर आज जिस आकार का पाया जाता है, उसके पुरखो का आकार वही नही था। आज उस जानवर के जो नमूने घूमते फिरते नजर आते है, वे बहुत छोटे है और उसी जाति के जानवरो के पुरखो के जो ककाल मिट्टी तले पथरा गये (फॉसिल हो गये) है, वे उनकी तुलना मे बहुत बड़े है। डारविन सोचते कि यह अन्तर क्यों है।

एक जगह उन्होने ऐसा ककाल देखा जिसने उन्हे गहरे सोच मे डाल दिया। उसका मेल आज के किसी एक नही बल्कि बहुत से जन्तुओ से बैठता था—मानो इन बहुत से जन्तुओ के शरीर एक ही मे मिल गये हों। रेलवे का जैसे कोई जकशन होता है न, और वहा से अलग-अलग लाइनो पर अलग-अलग गाडिया चलती है, इसी तरह पुराने जमाने का यह जानवर मानो कोई जन्तु-जकशन हो। उससे निकलकर बदलते-बदलते नाना प्रकार और नाना जातियों के जानवर अपनी-अपनी विशेषताए लेकर अलग-अलग राहे चुन कर, विकास की दिशा मे बढ चले थे।

इसके साथ ही डारविन भूतत्व का अध्ययन भी करते रहे। जिस देश मे वह जाते, जिस टापू में जाते, उसकी धरती, पहाडों, नदियो, तराइयो आदि की गठन की जांच-पडताल करते और उनका हिसाब लगाते। लॉयल की किताव ने उन्हे जो शिक्षा दी थी, उसका उन्होने पूरा-पूरा उपयोग किया। उनकी इच्छा हुई कि जिन-जिन देशो में वह घूम आये हैं, उन सवका भूतात्विक वर्णन देकर एक पुस्तक लिख डाले।

जो भी देखा, लिख लिया। यह तो उनकी पुरानी आदत थी। स्कूल जीवन के दिनों से ही। पन्नों पर पन्ने भरते गये, पोथियो पर पोथिया भरती गयी।

ये सारे लेख वह चिट्ठियो के रूप मे घर भेजते रहे। अपने वापू के पास, अपनी वहनो के पास, अध्यापक हेनसलो के पास। अध्यापक महोदय के पास तो वह चुने हुए पथराये ककाल (फॉसिल) भी भेजते रहे। अध्यापक महोदय और-और वैज्ञानिको को बुलाकर ये सारे उपहार दिखाते रहे।

एक बार घर से आयी चिट्ठी मे डारविन ने पढ़ा कि उनके यात्रा-वर्णनो को पढकर और उनके भेजे हुए ककालो (फॉसिलो) को देखकर अध्यापक सेज-

विक ने कहा था कि चार्ल्स आगे चलकर बहुत ऊंचे दरजे का वैज्ञानिक वनेगा। अध्यापक से यह प्रशसा पाकर डारविन खुशी से फूले न समाये। अपने जीवन-वृत्तान्त मे डारविन ने लिखा है कि इस चिट्ठी को पढने के बाद मै छलागे भरता हुआ पहाड़ो पर चढ़ने लगा, मेरी हथौडी की चोटे खा-खाकर पहाड कापने लगे! कितना महत्वाकाक्षी था मैं!

पांच साल तक "विगुल" जहाज समुद्रों का चक्कर लगाता रहा। पांच साल तक डारविन की एक के बाद दूसरी पौथी भरती रही।

सन १८३६ मे डारविन गट्ठर की गट्ठर पोथिया लादे जहाज से उतरे। इन पोथियो मे अनगिनत तथ्य भरे हुए थे। जीव-जगत के बारे मे इतने तथ्य उन दिनों और किसी को मालूम नही थे।

इतने सारे तथ्यो से मानव का कोई भला होने वाला था? क्या इससे मानव के ज्ञान की सीमाए कुछ फैली?

हा, वेशक फैली। डारविन ढेर के ढेर तथ्य इकट्ठा करने के लिए ही पैदा नही हुए थे। उन्होंने एक नयी वात का, प्रकृति-विज्ञान के एक नये सूत्र का, आविष्कार

भी किया। इस नयी बात ने, विज्ञान के इस नये सूत्र ने, मानव की उस दिन तक की तमाम पुरानी धारणाओं को चूर-चूर कर डाला।

डारविन हमेशा सोचा करते थे। वह सोचते थे कि इतना सारा जो मैंने देखा है, उसका मतलब क्या है? जहाज पर ही उन्होंने इस सवाल पर सोचना शुरू कर दिया था। बडी गहराई से सोचते थे वह। अपनी सारी बुद्धि को एक जगह समेट कर, एकचित्त होकर सोचते। इन तमाम तथ्यों और घटनाओं के रहस्य को भेदने की कोशिश करते। वह अपने आप से पूछते कि इतना सारा जो कुछ मैंने देखा है, उसका आखिर मतलब क्या है?

सोचते-सोचते एक बात उनके मन में उठी। लेकिन किसी बात के मन मे उठने से ही तो काम नही बन जाता न। मन मे उठने वाली बात पर विज्ञान विश्वास नही करता। उसे युक्ति और तर्क से प्रमाणित करना पड़ता है।

वह कौन सी बात थी जो डारविन के मन मे उठो?

"हमारा यह प्रश्न ग्रह महाकर्प के निश्चित स्थायी नियम के अनुसार घूमता रहता है। ठीक उसी तरह एक अत्यंत ही सामान्य आरभ से धीरे-



धीरे क्रम-क्रम से विकसित होते-होते अनगिनत सुदरतम और अद्भूततम रूपो का विकास हुआ है, और अब भी होता जा रहा है।"

डारविन के मन में उठी इस बात का क्या मतलब था ?

इसका मतलब था यह कि धरती पर जो कुछ है, वह सब बदलता जा रहा है। खुद धरती भी बदल रही है। धरती का जो पहला रूप था, वह अब नही रहा है। आज जो धरती है, वह इस रूप मे बहुत बदलते-बदलते आयी है और आज की इस धरती पर भी हेर-फेर का क्रम जारी है।

इस धरती पर जो जीव जगत और वनस्पति जगत है, वे बदलते रहे है और बदलते जा रहे हैं। पहले-पहल जो पेड़-पौधे उगे थे, पहले-पहल जो जीव पैदा हुए थे, वे बहुत ही छोटे, सीधे-सादे और सामान्य थे। फिर वे पुराने पड़े, बदले और क्रम-क्रम से पुराने की जगह नये दिखाई पड़ने लगे। बदलते-बदलते साधारण की जगह विशेष नजर आने लगे। सीधे-सादे के बजाय जटिल रूप प्रकट हुए। जीव जगत निचली सीढियां पार करके ऊपरी सीढ़ियों पर चला आ रहा है।

इस तरह की बाते डारविन के मन में उठती थी।

तो फिर इंतजार किस बात का था? क्या डार-विन यह नही कर सकते थे कि मन में उठी इस बात को अपने अनगिनत तथ्यो के आधार पर वैज्ञानिक सत्य के रूप मे स्थापित कर दे? डारविन ने अपने-आपसे कहा कि इसके लिए अभी कुछ इंतजार करना पड़ेगा।

इतना देख-सुन लेने पर, इतना जान-बूझ लेने पर भी डारविन ने अपने-आपसे कहा कि अभी तक काफी जानकारी हासिल नही हुई है। अभी और देखना होगा, अभी और जानना होगा। ऐसे प्रमाण देने होगे जिनकी कोई काट न हो, किसी तरह की भूल या गलती की गुंजाइश न रह जाय।

समुद्री यात्रा से लौटने के बाद डारविन ने तपस्वी की तरह जीवन बिताना शुरू कर दिया। यह तपस्या ज्ञान के लिए थी। जांच-परख, अध्ययन-अनुशीलन, बहस-मुबाहसे, लिखना-पढ़ना—ये इस तपस्या के अंग थे। पूरे २३ वर्ष तक डारविन ऐसा ही एकाग्र, श्रम-कठोर जीवन बिताते रहे।

छः

डारविन को अभी बहुत कुछ देखना-परखना और सोचना-समझना था। इसके लिए एक प्रयोगशाला जरूरी थी।

लेकिन शहर मे नही, गाव में। प्रकृति के एकदम नजदीक।

बहुत खोज-बीन के बाद डारविन को 'सारे' जिले के 'डाउन' नामक गाव मे एक मनपसद मकान मिला। शहर के कोलाहल से दूर, 'डाउन' एकात गाव था। एकाग्र होकर विज्ञान की साधना के लिए यह बहुत ही उपयुक्त जगह थी। सन १८४२ की १४ सितम्बर को डारविन अपने नये मकान में आ गये।

डारविन का स्वास्थ्य बहुत अच्छा नही था। ज्यादा दौड भाग करने पर वह अस्वस्थ हो जाते थे। इसीलिए सामाजिक उत्सवो-समारोहो मे वह बहुत ही कम आते-जाते थे। सगी-साथियो और पाच-पचों से

मिलना-जुलना और बातचीत करना उन्हे अच्छा लगता था। लेकिन शरीर साथ दे तब न! इसीलिए कभी-कभी वह क्षुब्ध हो उठते थे। लेकिन फिर काम मे डूब जाने पर यह क्षोभ दूर हो जाता था और मन को तृप्ति मिलती थी।

डारविन को खूब सवेरे उठने की आदत थी। हाथ-मुह धोकर वह टहलने निकल पडते। ठीक पौने आठ बजे लौटकर जलपान करते और फिर पढाई-लिखाई के कमरे मे पहुच जाते।

पढाई-लिखाई के इस कमरे का वर्णन डारविन के बचपन के संस्मरणो मे मिलता है।

खिडकी से अटका रखा गया एक बोर्ड ही उनकी मेज का काम देता था। इसी पर वह जाच-पड़ताल और काट-छाट के काम करते थे। इस मेज को कुछ नीचा करके लटकाया गया था, ताकि बैठे-बैठे काम करने मे सुभीता रहे। पास ही एक और गोल मेज थी। उसकी अलग-अलग दराजो मे अलग-अलग चीजे रहती थी। दराजो पर ठप्पे लगे रहते "उम्दा औजार," "कामचलाऊ औजार," "नमूने," इत्यादि, इत्यादि। काम करते-करते जब जिस चीज की जरूरत होती, चार्ल्स दराज खीच कर उसे निकाल लेते। मेज

के दाहिनी तरफ ताको की पात थी। इन ताको पर छोटी-छोटी चीजे सजा कर रखी रहती थी। काच के गिलास, रकाबिया-तश्तरियाँ, बिस्कुट के डब्बे (चारा देने के लिए), गत्ते के ठप्पे, रेत से भरे काच के गमले और इसी तरह की न जाने कितनी चीजे।

इस तरह बडे ढग से काम करने वाले आदमी थे डारविन। इसीलिए उनका समय बेकार बरबाद नही होता था। इसीलिए उन्हे कभी कोई काम दुबारा नही करना पड़ता था।

अच्छा तो अब लौट चले डारविन के काम की कहानी पर।

बेहद पढते थे डारविन। जीव-जन्तुओ और पेड़-पौधों के बारे मे जहां कही कोई लेख या किताब निकलती, ढूढ-ढांढ कर उसे ले आते और पढ डालते। पढने का मतलब सिर्फ पन्ने पलटना ही नही था। वह जरूरत की बातो पर पेंसिल से निशान लगाते, हाशिये पर अपने नोट लिख लेते और किताब के आखिरी पन्ने पर निशान लगे पन्नो की सूची बना डालते। किताबो की जब पक्की तालिका तैयार करते तो निशान लगे पन्नो को देख-देखकर पूरी किताब का साराश लिख डालते।

इतनी मेहनत से लिखे साराश-लेखो को डारविन कुबेर के धन की तरह बडी हिफाजत से रखते। एक बार गांव मे आग लग जाने का खतरा पैदा हो गया। डारविन ने अपने मझले लड़के फ्रांसिस को बुलाया और उसको समझाया कि "जैसे भी हो, बेटे, मेरे लेखो की पेटियो को जरूर बचा लो। अगर वे आग की भेंट हो गयी तो मुझे सिर पटक-पटक कर जान दे देनी पड़ेगी।"

लेकिन डारविन सिर्फ पोथी-घोंट पडित नही थे। किताबे पढना तो उनकी वैज्ञानिक खोज-बीन का, तथ्य संकलन का, एक पहलू भर था।

तो और पहलू कौन-कौन से थे ?

खुद अपनी आखो से देखना।

अच्छी जातियो के, नयी जातियो के, फल उगाने वाले जिस माली की भी प्रशंसा होती, डारविन सीधे उसके बागीचे मे जा पहुचते।

जिनकी कोशिशो या परीक्षाओ के फलस्वरूप अच्छी नसल के, नयी नसल के जानवर—भेड़, गाय या सुअर—पैदा होते, डारविन सीधे ही उनके गोठो या वथानो मे जा पहुचते।

वहा जाकर वह अपनी आखो से सब-कुछ देखते,

माली या चरवाहे के साथ बातचीत करते और सवाल पर सवाल करके यह जान लेना चाहते कि यह सब हुआ कैसे।

लेकिन सभी के पास पहुच पाना और सब-कुछ अपनी आखो से देख पाना सभव है नही। इसलिए उन्होंने बीच-बीच मे लोगो के पास डाक से सवालो की सूची भेजनी शुरु की। वह इस सूची को छपा लेते और अलग-अलग लोगो के पास पत्र भेजते कि कृपा करके इन सवालो का जवाब लिख भेजिये और इस तरह मेरी मदद कीजिये।

यहां डारविन की एकाध झक्क की चर्चा करने को जी चाहता है।

कागज कोई अनमोल चीज तो है नही! लेकिन कागज पर डारविन की बेहद ममता थी। कागज की बरबादी वह जरा भी बरदाश्त नही कर पाते थे। सादा कागज, एक ही तरफ लिखा हुआ या छपा हुआ कागज, वह बड़े जतन से रख छोडते। इन्ही कागजो पर वह अपने लेखो को पहले लिखते। सुनते है कि विद्यासागर जी का कागज-प्रेम भी कुछ ऐसा ही था।

अब जो खबर मै सुनाने जा रहा हू, उसे सुनकर तुमको बहुत ही अचम्भा होगा।

मान लो कि हम डारविन से भेट करने गये है। दरबान हमें पढ़ाई-लिखाई वाले कमरे मे पहुचा गया है। पहुचते ही हम क्या देखते है कि डारविन बहुत सुन्दर छपाई-बधाई वाली एक किताब गोद मे रखे, उसे बडी तेजी से फाडते चले जा रहे है। ऐसी हालत मे हम सचमुच चकित होकर बेवकूफो की तरह खडे देखते रह जायेगे। इसके लिए हमे तैयार न पाकर डारविन पहले जरा-सा हस उठेगे। फिर धीरे-धीरे कहेगे, "किताब बडे काम की है। अक्सर इसकी जरूरत पड जाती है। लेकिन है बडी मोटी। मोटी किताब मेरी आंखो को जरा भी नही सुहाती। उलटने-पुलटने और हटाने-रखने मे बडी दिक्कत होती है। इसीलिए इसे फाडकर दो हिस्से किये ले रहा हूं।"

लॉयल की किताब "भूतत्व की मूल नीति" का नाम मै पहले भी बता चुका हू। काफी बडी किताब है वह। डारविन के बारम्बार हठ करने पर लॉयल साहब ने अपनी इस किताब का दूसरा सस्करण दो हिस्सो मे छपवाया।

अच्छा, छोडो किस्सो-कहानियो को! अब काम की बात पर आ जाये।

सन १८४४ मे डारविन की पहले-पहल छपी

रचना प्रकाशित हुई। यह किताब आग्नेय द्वीप के बारे में थी।

सन १८४५ मे डारविन के यात्रा-वर्णनो का दूसरा सस्करण निकला। पहला सस्करण फित्जरॉय की रचना के साथ ही छपा था। इस बार यह अलग से निकला। जिस तरह पहली सतान पर मा का विशेष प्यार होता है, उसी तरह इस किताब पर डारविन की ममता सदा बनी रही। इस किताब की बिक्री भी खूब हुई थी। दूसरा संस्करण दस हजार का छपा था। एक भी प्रति बची नही रही। डारविन के जीवन काल मे ही इस पुस्तक का अनुवाद जर्मन और फ्रांसीसी भाषाओ मे हो चुका था। उनके भी एक से अधिक संस्करण छप चुके थे।

सन १८४६ मे "दक्षिणी अमरीका का भूतात्विक पर्यवेक्षण" ('जियॉलॉजिकल ऑवजरवेशन ऑन साउथ अमेरिका") नाम की एक और किताब प्रकाशित हुई।

सन १८४६ से लगातार आठ वरसो तक डारविन मेरिपिड नाम के एक समुद्री जीव की परीक्षा मे लगे रहे। इस जीव पर सबसे पहले डारविन की ही नजर पडी थी। उन दिनों वह "बिगुल" जहाज में दुनिया

की सैर कर रहे थे। यह जीव उन्हे चिली देश के किनारे समुद्र में मिला था। चिली के समुद्र-तटवाले इसी जाति के दूसरे जीवो के साथ इसका इतना अधिक अतर था कि उसकी ओर ध्यान गये बिना रह नही सकता था। कई बरसो के बाद पुर्तगाल के किनारे के समुद्र मे इस तरह के एक और सेरिपिड का पता लगा। आठ बरस के शोध-संधान और जांच-पडताल के बाद इस सेरिपिड के बारे में दो किताबे प्रकाशित हुई।

सन १८५४ के सितम्बर महीने से डारविन "बिगुल" जहाज पर लिखी अपनी पोथियों को पढ़-पढ़कर दिमाग मे विचारो को सहेजने लगे। इन पुराने लेखो पर निगाह डालते-डालते कई सिद्धान्त उनके मन मे धीरे-धीरे जड़े जमाने लगे। उन्होंने बारम्बार खुद ही व्यावहारिक परीक्षाए करके इन सिद्धान्तों को कसौटी पर परखना शुरू किया।

सन १८५६ मे लॉयल साहब ने डारविन को लिखा कि तुम अपने सिद्धान्तो को तथ्यो का प्रमाण देकर ब्योरे-वार लिख डालो। उनकी बात मानकर डारविन ने अपने सिद्धान्तों को लिखना शुरू कर दिया। यह काम आधे के करीब पहुचा ही था कि एक नयी तरह की समस्या उठ खड़ी हुई।

अलफ्रेड रसेल वैलेस नाम के एक अंग्रेज प्रकृति-खोजी सज्जन दक्षिण-पूर्वी एशिया के विषुवद्-अचल के पेड-पौधो और जीव-जन्तुओ के बारे मे खोज का काम कर रहे थे। सन १८५८ की गर्मियों में वैलेस साहब ने डारविन के पास एक लेख भेजा। लेख मलाया प्रायद्वीप से भेजा गया था। साथ मे एक चिट्ठी भी थी। चिट्ठी मे लिखा था कि आप (यानी डारविन साहब) अगर यह समझे कि इस लेख का कोई मूल्य है, तो कृपा करके इसे लॉयल साहब के पास भेज दें।

लेख पढ़कर डारविन तो विलकुल अवाक् रह गये! जो कुछ वह सोच रहे थे, वैलेस ने भी ठीक वही लिखा था।

इंगलैंड मे उन दिनो एक वैज्ञानिक समिति थी। उसका नाम था लिनियन सोसायटी। वैलेस का लेख वही भेजा गया। लॉयल साहब और हूकर नाम के एक मित्र के अनुरोध पर डारविन ने भी अपने सिद्धान्त का सारांश तैयार कर लिनियन सोसायटी के पास भेज दिया। दोनो लेख सोसायटी की पत्रिका मे एक साथ प्रकाशित हुए। वैलेस के लेख की भाषा बडी साफ-सुथरी और वोधगम्य थी। लेकिन डारविन के लेख की भाषा वडी शिथिल और ऊबड-खाबड थी। डारविन ने

आशा की थी कि उनकी रचना को पढ़कर वैज्ञानिकों मे हलचल मच जायेगी। लेकिन ऐसी कोई बात नही हुई। डबलिन के एक अध्यापक ने इन रचनाओ पर अपनी राय प्रकट करते हुए कहा कि इनमें जो नयी बातें है वे सब झूठ है, और जो सच है, वे सब पुरानी बातें है।

इस घटना से डारविन को एक अच्छी सीख मिली। सीख यह थी कि जब कोई नई बात लोगों को सुनानी हो तो उसे खूब फैलाकर, विस्तार के साथ, समझा-बुझाकर, कहना चाहिए। नही तो लोग उस पर ध्यान नही देगे, उसे लेकर माथा-पच्ची नही करेगे।

खैर जो भी हो! डारविन निराश नही हुए। अधूरा छोडा हुआ काम उन्होने फिर शुरू कर दिया। १३ महीने, १० दिन के अथक परिश्रम के बाद लिखने का काम समाप्त हुआ।

२३ साल बाद किताब निकाली। 'निकली' कहना कुछ गलत होगा। किताब दरअसल डारविन से निकल-वायी गयी। कारण यह कि २३ वर्ष बीत जाने पर भी वह यही सोच रहे थे कि अभी इसे निकालने का समय नही आया है, यह कि जल्दबाजी करके किताब छपा देना उचित नही होगा। लेकिन सगी-साथियों और मित्रो ने

हठ किया। उन्होने कहा कि अब किसी भी कारण देर नही करने दी जा सकती। देर हुई तो मामला बिगड जायेगा, इस महान आविष्कार के यश से डारविन वंचित रह जायगे।

मित्रो के अनुरोध को डारविन टाल नही सके। सन १८५९ के नवम्बर महीने में डारविन की "ओरिजिन ऑफ स्पिशीज" नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। २३ वर्षो के दीर्घ परिश्रम के फलस्वरूप जिस दिन इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की १,२५० प्रतियां छपकर निकली, उसी दिन हाथो-हाथ बिक गयी। एक भी प्रति नही बची। दूसरे सस्करण की ३००० प्रतिया भी देखते ही देखते खप गयी। सन १८५९ से सन १८७६ तक के १७ बरसों मे विज्ञान की ऐसी जटिल पुस्तक की १६ हजार प्रतियां बिक गयी। हमारे देश मे विज्ञान की किताबों का ऐसा आदर होने मे अभी कितनी देर है!

इस किताब ने मानव समाज के चिंतन जगत में एक भयानक उथल-पुथल मचा दी। पादरियो का पारा तो सातवें आसमान पर चढ गया। वे चीखने लगे. "धर्मद्रोह! धर्मद्रोह! बाइबिल मे ऐसी बात नही लिखी है। डारविन को मानने का मतलब है,

बाइबिल को मानने से इनकार करना। अगर डारविन का कहना सच है, तो बाइबिल झूठी ठहरती है !"

(डारविन पादरी होने चले थे न !)

बाइबिल क्या कहती है ? बाइबिल कहती है कि ईश्वर ने 'किसी शुभ दिन' नाना जातियो के प्राणियो की सृष्टि कर उन्हे धरती पर छोड दिया, बिखेर दिया। अर्थात् आज हम जो कुछ भी देखते है वह सब, प्रत्येक पेड़-पौधा, प्रत्येक प्राणी, सृष्टि के पहले दिन से ही इस पृथ्वी पर मौजूद है।

और डारविन क्या कहते है ? डारविन कहते है कि यह सब-कुछ पहले दिन से ही नही बल्कि धीरे-धीरे अस्तित्व मे आया है, विकास की सीढ़ियां पार करता हुआ आया है, बदलता-बदलता आया है।

जो लोग मनुष्य को बडा, महान, बनाना चाहते हैं, पृथ्वी को और भी अधिक सुख-समृद्धि का स्थान बनाना चाहते हैं, उन्होने बाइबिल को रद्द कर दिया।

उन्होने डारविन को मान लिया।

डारविन का मत क्या है ? किन-किन तथ्यो के प्रमाण देकर डारविन ने अपने मत को अकाट्य सिद्ध किया है ?

इस वहस को शुरू करने से पहले डारविन के जीवन की दो-चार और बातों को जान लेना उचित रहेगा।

"ओरिजन ऑफ स्पिशीज" ही डारविन की प्रधान पुस्तक है। पर डारविन ने उसके वाद और भी कई छोटी-बडी पुस्तके लिखी। डारविन-सिद्धान्त को समझने के लिए इन पुस्तको को पढ़ना भी अत्यत आवश्यक है।

सन १८६८ में डारविन की पुस्तक "घरेलू जानवरों और पौधों के अन्दर प्रकार भेद-जनक परिवर्तन" ("वैरियेशन ऑफ ऐनिमल्स् ऐंड प्लांट्स् अण्डर डोमेस्टिकेशन") निकली।

सन १८६२ मे ही ऑरकिड के पेड़ के वारे मे डारविन की लिखी हुई एक और छोटी पुस्तक छपी थी। सन १८७५ में "लत्तरदार पौधे" ("क्लाइविग प्लाट्स्") नाम की पुस्तक निकली।

सन १८७१ मे "मनुष्य का अवतार" ("डिसेंट ऑफ मैन") नाम की पुस्तक निकली थी। सन १८७२ में "मानव और पशु मे भावनाओं की अभिव्यक्ति" ("एक्सप्रेशन ऑफ इमोशंस इन मैन ऐंड ऐनिमल्स") पुस्तक निकली। यह पुस्तक भी वड़ी तेजी से विकी। पहले दिन ही उसकी ५,२६७ प्रतिया विक गयी थी!

सन १८७५ में "कीट-भोजी पौधे" ("इनसेक्टिवोरस प्लांट्स्") प्रकाशित हुई। सन १८७७ में "फूलों की विविध आकृतियां" ("डिफरेंट फॉर्म्स ऑफ फ्लावर्ज") छपी। सन १८७९ में उन्होंने अपने पितामह की जीवनी ("लाइफ ऑफ इराजमस डारविन") प्रकाशित करायी। सन १८८० में "पौधों की गति-शक्ति" ("पावर ऑफ मूवमेंट इन प्लांट्स्") प्रकाशित हुई।

आइये, अब हम डारविन-सिद्धान्त के बारे में बातें शुरू करें।

सात

एक है तालाव। मान लिया कि इस तालाव में एक मछली ने ५०० अंडे दिये है। अव अगर एक-एक अंडे से एक-एक वच्चा हुआ तो तालाव में मछली के कितने वच्चे पाये जाने चाहिए? ५०० न? लेकिन उतने पाये जाते हैं? और जितने वच्चे पाये भी जाते हैं, क्या सवके सव वढ़कर मछली वन जाते है? इनमें से हर प्रश्न का उत्तर है: नही!

एक वागीचा है। वागीचे में अमरूद का एक ही पेड़ है। गिनकर देखा कि इसमे तीस अमरूद लगे है। मान लिया कि एक-एक अमरूद में सौ-सौ वीज हैं। कुल वीज कितने हुए? ३००० न? तो इन ३००० वीजो से अमरूद के ३००० पौदे उगने चाहिए। दो-चार वरसो मे वागीचे को अमरूद के पड़ो से भर जाना चाहिए। लेकिन क्या सचमुच कभी वह ऐसा भरता है? जितने पौदे उगते है, सवके सव क्या

बढ़कर पेड़ बन जाते है ? फल देने लगते है ? इनमें से भी हर प्रश्न का उत्तर है : नही !

डारविन द्वारा दिये गये एक उदाहरण को ही ले लीजिये ।

हाथी, औसत सौ साल तक जीता है । सौ बरसों मे हाथी के एक जोड़े से औसत छः बच्चे होते है । मान लिया जाय कि ७५० साल पहले हाथियों का एक ही जोडा था । सच पूछो तो थे बहुत से जोड़े, लेकिन मान लिया कि एक ही जोड़ा था । अब हिसाब लगाओ कि हाथियों के इस एक जोड़े से इन ७५० वरसों मे कितने हाथियों को पैदा होना चाहिए था । एक करोड़ नब्बे लाख न ? लेकिन इतने हाथी पैदा हुए भी है ? जाहिर है . नही !

डारविन की भाषा मे इस घटना को कहते है—अति-प्रजनन ।

अडे अनेक होते है, वीज अनेक होते है, बच्चे अनेक होते है । लेकिन सवके सब बचते नही, जीते नही, वड़े नही होते । अधिकतर मर जाते है । वचते हैं थोड़े से ही । वडे भी थोडे से ही होते है ।

प्राणी के जन्म लेते ही उसकी लडाई शुरू हो जाती है · जीने के लिए लडाई, जीते रहने के लिए

लड़ाई। अगर जीना है, तो खाने के लिए भोजन जुटाने का बदोवस्त करना ही पड़ेगा, रोगो का सामना करना ही पड़ेगा, अपनी प्रकृति को चारो तरफ की आबहवा के अनुकूल बनाना ही पड़ेगा, अपने से शक्तिशाली शत्रुओं से अपनी रक्षा—आत्मरक्षा—करनी ही पड़ेगी।

डारविन की भापा मे इस घटना का नाम है: जीवित रहने के लिए लडाई, या अस्तित्व के लिए सघर्ष।

इस लड़ाई मैं जो जीतता है, वही टिक पाता है, जो हारता है, वही मिट जाता है।

जीतता कौन है? कौन टिक पाता है?

जिसमें लड़ने की क्षमता अधिक होती है। एक उदाहरण ले लिया जाय।

एक जगल है। इस जगल मे हिरनो का एक झुड रहता है। एक बार इस जगल मे एक बाघ आया। कितने ही हिरन तो बाघ के पेट मे समा गये। कुछ ही बच रहे। कौन बच रहे? बच रहे वे जिनकी निगाहे औरो से ज्यादा पैनी और तेज थी, जो औरो की तुलना मे ज्यादा तेज दौड़ लेते थे। इस तरह हम देखते है कि एक ही जाति के होने पर

भी सब हिरन हू-बहू एक ही तरह के नही होते। कोई-कोई औरो से जरा अलग तरह के होते है। उनमें औरो से एक मामूली अन्तर होता है। उसी मामूली से अन्तर के बूते पर उनमे से कई बच गये। इसी मामूली अन्तर के अभाव में बाकी सारे मारे गये!

डारविन की भाषा मे इस घटना का नाम है प्रकारण, अर्थात्, प्रकार-भेद पैदा होना।

जो बचे रहे, वे अब इस बात की कोशिश करेंगे कि अपने बच्चो को, अपने वशवालों को भी, यह विशेष गुण देते जाये। अर्थात्, उनके बच्चे अपने मां-बाप और दादा-दादी की तरह अपनी निगाहे पैनी रखने की कोशिश करे, लबी-लंबी छलागे भरकर दौडने की कोशिश करे। हो सकता है कि इस कोशिश मे एक ही पीढी के अन्दर वे सफल न हो पाये, लेकिन कई पीढियो तक कोशिश करते रहने पर धीरे-धीरे ये विशेष गुण उनके अन्दर क्रमश विकसित हो जायेंगे।

मान लो कि बरसात नही हुई है। मिट्टी पत्थर की तरह कडी पड गयी है। पेड-पौधे सूखे जा रहे है, मुरझाये जा रहे है। बहुत गरमी है। लेकिन इस गरमी मे भी ऐसे एकाध पेड है जो मुरझा तो गये

है, लेकिन मरे नही हैं। पानी पीते ही वे फिर ताजे और हरे-भरे हो उठते है। ये पेड़ अगर वच गये तो किस बल-बूते पर बच गये? इसका सीधा जवाब यही है कि और पेड़-पौधो की अपेक्षा ये ज्यादा गरमी बरदाश्त कर सकते है।

यह विशेपता, यह स्वतन्त्रता, हरएक के अन्दर, हरएक जीव के अन्दर, प्रत्येक उद्भिद के अन्दर, एक ही परिवार के अन्दर, वल्कि एक ही मां के पेट से पैदा हुए भाई-वहिनो के अन्दर भी, किसी-किसी मे पैदा हो जाती है। कोई अधिक जाडा-पाला सह सकता है, तो कोई अधिक गरमी सह सकता है। कोई अधिक भूख सह सकता है तो कोई कम। रोग होने पर कोई अधिक कमजोर हो जाता है तो कोई कम।

ऐसी हालत मे जीतता कौन है? कोन टिक पाता है? वही जो औरो की वनिस्वत कुछ अधिक स्वतत्र, कुछ अधिक विशिप्ट होता है।

जो वच जाता है, उवर जाता है, वह अपने शरीर के उन अगो को और भी पूर्णता की ओर पुप्ट करता है जिन अगो ने उवरने मे, वचे रहने मे, उसकी सहायता की होती है। जिस अभ्यास ने, जिस गुण ने, उसे औरो की तुलना मे श्रेप्ठ वनाया, उस

अभ्यास का, उस गुण का, व्यवहार वह और अधिक करने लगता है। और, जो अंग उसके किसी काम नही आये उन्हे त्याग देने की कोशिश करने लगता है। जो अभ्यास उसके आगे बाधा बनकर खड़े हो गये थे, उन्हे उसने बराने की कोशिश शुरू कर दी। इसी तरह से धीरे-धीरे बहुत दिनों तक उसके उन्नत अग और उसके अच्छे अभ्यास उसके वशधरों मे क्रम-क्रम से आप ही आप पनपने लगे और क्रम-क्रम से अत्यत स्पष्ट रूप मे पनप उठे। इस तरह उस जाति की एक नयी प्रजाति या शाखा पैदा हो जाती है।

कुछेक उदाहरण लेकर इस मामले को कुछ और गहराई से, तौलकर, समझ लिया जाय।

किसी गृहस्थ के घर के पिछवाडेवाले पोखर के पालतू हंस को ले लीजिये। क्या वह हस लम्बी-लम्बी उडाने भर सकता है ? नही। डैने तो उसके भी हैं। लेकिन डैनो के बावजूद वह अच्छी तरह उड नही पाता। और जगली हस है कि गजब की उड़ाने भरते है।

यह हुआ कैसे ?

डारविन ने तौला।

क्या तौला।

उन्होंने पालतू और जगली हसों के डैनो की हड्डियों को तौला। उन्होने देखा कि पालतू हस के डैनो की हड्डी वजन मे वहुत हल्की होती है। उन्होने यह भी देखा कि पालतू हस के पैरो की हड्डी जंगली हंस के पैरों की हड्डी से काफी भारी होती है।

यहक्‍ यों हुआ ?

यह इसलिए हुआ कि जगली हस उडता है ज्यादा, और पालतू हस चलता है ज्यादा।

पालतू वनने से पहले सभी हंस जंगली होते थे, उड़ते-फिरते चारे की टोह लगाते रहते थे।

पालतू वनने के वाद उनके जीवन का सिलसिला ही वदल गया। उन्हे तालाव मे तैरने और तैरकर चारे की जुगाड करने की कला सीखनी गडी। क्या सभी जंगली हस शुरू से अच्छी तरह तैरने लगे ? नही, ऐसी वात नही हुई। उनमे से जिनके पैरो मे कुछ ज्यादा जोर था, वेहतर तैर सके, अपने लिए चारे का वदोवस्त कर सके, जी गये, वडे हुए, उनके वाल-ब्रच्चे पैदा हुए। धीरे-धीरे तैरने की यह ताकत पीढी-दर-पीढी और भी हसो मे फैलती गयी। क्रमश जगली हसों की जाति दो अलग-अलग शाखाओ मे वट गयी। पालतू हंसों की अलग जाति वन गयी और जगली हसो

की अलग। अवस्थाओ मे हेरफेर के कारण पालतू हसो के शरीर की बनावट भी एकदम बदल गयी।

या, मछली की मिसाल ले लो।

जिन जीवो के रीढे होती है उन्हे समेरुक या रीढ़दार प्राणी कहते है। इस धरती पर सबसे पहले जिस पूरे-पूरे समेरुक या रीढदार प्राणी ने जन्म लिया वह थी—मछली।

करोडो-करोड साल पहले की बात है। एक बार ऐसी अवस्था आ गयी कि पानी के अन्दर रह पाना मछलियों के लिए असम्भव हो गया। वे दिन भी इस धरती पर भयकर सूखे के दिन थे। सूखी धरती पर निकले बिना जान बचाना मुश्किल था। कोई और चारा था ही नही। तो क्या सभी मछलियां सूखी धरती पर आ सकी? नही, यह सबके बस का काम नही था। हम अपनी आंखो से देख सकते है कि कवई मछली बड़े मजे मे टहलती हुई सूखी जमीन पर चली आती है और हिल्सा सूखी जमीन पर रखे जाते ही बेबसी से फड़फडाने लगती है।

खैर जो भी हो। किसी-किसी जाति की मछलियो ने सूखी धरती पर भी जीवित रहने की कला सीख ली। नदी-समुद्र के फिर से भर जाने पर भी वे पानी

में नही लौटी। वे धरती पर ही रह गयी। मिसाल के लिए मेढकों की जाति का नाम लिया जा सकता है। इस तरह हम देखते है कि एक विशेप जाति के जलचर प्राणी ही थलचर मेढक वन वैठे। वाहर से, सिर्फ ऊपर-ऊपर से, इस विपय को समझ पाने का कोई उपाय नही है। लेकिन उनके शरीर के चमडे को उघारकर देखा जाय तो हम यही पायेगे कि दोनो जातियो के शरीर की अदरूनी वनावट में वेहद एक-रूपता है। मछली के छवो और मेढक की वेगचियो (मछली के आकार के उनके वच्चो) को पास-पास रखकर देखा जाय तो—पहले से न मालूम होने पर—कहना कठिन हो जायगा कि इनमे से मछली के वच्चे कौन से है और मेढक के कौन से। मेढक उभयचर, यानी पानी तथा सूखी जमीन मे दोनो जगह रह सकनेवाला, प्राणी है। अपने वालपन यानी वेगची-जीवन में तो वह पानी मे रहता है यानी जलचर होता है, और दुम के झड जाने के वाद, मेढक वनते ही, थलचर वनकर सूखे मे रहने लगता है। इससे यह समझा जा सकता है कि मेढक पहले पूरा जलचर था। वह पानी में रहता था और जलचरो की ही एक शाखा की अवस्था मे हेरफेर होने पर मेढक उभयचर वन गया।

अब जिराफ का उदाहरण लेकर इस विषय को समझा जाय।

किसी जंगल मे जिराफो का एक झुड रहता था। ध्यान रहे कि आज-कल के जिराफो के जो पुरखे थे, उनकी गरदने इतनी लम्बी नही थी। उस जगल मे जितने भी पेड-पौधे थे, सब ऊचे-ऊचे थे। सभी जिराफो की गरदने एक-समान लम्बी नही थी। सो जिनकी गरदने कुछ ज्यादा लम्बी थी, वे ही ऊची डालो तक अपना मुह पहुचा पाते थे। वे ही फल-पत्तिया खाकर अपने जीवन की रक्षा कर सके और अपना वश चला सके। लेकिन छोटी गरदनवाले न तो आप बचे रह सकते थे और न अपने वश को ही बढ़ा सकते थे। लम्बी गरदनवालो के वश वढते रहे और वश-परम्परा मे पूरी जिराफ जाति ही लम्बी गरदन वाली हो गयी।

प्रकृति मे यह जो सिलसिले चल रहे है—सभी जीवो की अपना-अपना वश बढ़ाने की कोशिशे, उनके अन्दर जीवन की परम्परा को कायम रखने की लड़ाइया, अपने विशेष गुणो के कारण इन लडाइयो मे किन्ही-किन्ही की जीत, अपने बाल-बच्चों को उन विशेष गुणो को सिखा देने की कोशिशो आदि के सिल-

सिले—इन सभी सिलसिलों और घटनाओं को डारविन ने एक खास नाम दिया। यह नाम है :

प्राकृतिक निर्वाचन !

भला सीधी-सादी भाषा में निर्वाचन का क्या अर्थ होता है ? निर्वाचन का मतलब होता है—चुनाव। दस-पाच तरह की चीजों मे जो सबसे अच्छी चीज है उसे चुन लेने को ही कहते है निर्वाचन। चुन लेने का यह जो सिलसिला है, वह प्रकृति के अन्दर भी जारी रहता है। फलां ठीक है, उसमें लड़ने की ताकत ज्यादा है, वह जीने की लड़ाई में टिक सकता है, उबर सकता है, जीता रह सकता है, उसका वंश कायम रह सकता है—बस, इसलिए वह चुन लिया जाता है।

यही है डारविन का सिद्धान्त। ऊपर हमने घुमा-फिराकर, तरह-तरह के उदाहरण देकर इसी सिद्धान्त को समझाने की कोशिश की है। अब थोड़े मे, एक ही सांस मे, इस पूरे सिद्धान्त को कह डालने की कोशिश की जाय :

प्रकृति के अन्दर हम देखते है कि सभी प्राणी क्रम परम्परा से अपनी संतानें पैदा करते है। लेकिन जितने पैदा होते हैं, उतने जीते नही हैं। ज्यादातर ऊची

अवस्था मैं पहुंचने से पहले ही मौत के शिकार हो जाते है।

जीने के लिए उनके बीच भीषण लड़ाई छिड़ती है। खाने के लिए अपना भोज्य-पदार्थ जुटाने की लड़ाई छिडती है, आबहवा के साथ लडाई चलती है, अपनी आत्म-रक्षा को लडाई चलती है।

इस लडाई मे वही जीतता है, जिसमें कोई विशेपता औरो से बढ़-चढ़कर होती है। यह विशेषता कितनी भी मामूली क्यो न हो, अगर लडाई में जीतने मे उसकी मदद करती है, तो वह इसी बूते पर अपनी जीवन-रक्षा कर लेता है, अपना वंश बढ़ाने लगता है। अपनी इस विशेषता को वह अपने बाल-बच्चो को भी विरासत में देता है।

वंश की परम्परा बढ़ाने के साथ-साथ यह विशेपता और भी स्पष्ट होती जाती है, उसी वंश के अनेकों वंशधरो के अन्दर बढ़ती जाती है। और अखिरकार उस वश को एक नयी धारा मिल जाती है। इस तरह एक नयी शाखा या प्रजाति की सृप्टि होती है।

डारविन के सिद्धान्त में नयी बात क्या है? नयी बात है, परिवर्तन। डारविन ने इस परिवर्तन की एक

व्याख्या भी की है। यह परिवर्तन है, प्राकृतिक निर्वाचन। धर्म-शास्त्र इस परिवर्तन को नही मानते। धर्म-शास्त्रो का कहना है कि भगवान ने एक ही दिन में सब-कुछ तैयार कर दिया था। इसके बदले डारविन ने सत्य की स्थापना की—अकाट्य तथ्यो के प्रमाण देकर। वह जीव-विज्ञान की दुनिया में एक नया युग ले आये। उन्होने नये-नये आविष्कारों का रास्ता खोल दिया, और दुनिया के अनगिनत वैज्ञानिको को नये-नये तथ्यो को एकत्र करने के लिए प्रेरणा दी।

आठ

डारविन के प्रमाण क्या-क्या है ?

(१) इतिहास के प्रमाण ।

जीव-जगत की प्रत्येक जाति या उप-जाति का अपना एक इतिहास है। इतिहास बहियों या पोथियों मे नही लिखा है। यह लिखा हुआ है धरती की छाती पर, मिट्टी के विविध स्तरों पर, पथरायी ठठरियों (फॉसिलो) के साक्ष्यों के ऊपर।

(२) शरीर की गढ़न की तुलना से हासिल किये गये प्रमाण ।

ये वे प्रमाण है जो अलग-अलग जातियों के जीवो के अंग-प्रत्यग का मिलान करने पर मिलते है ।

(३) भ्रूण-गढ़न की तुलना से मिले प्रमाण ।

मां के पेट मे रहते समय किसी जीव के आकार-प्रकार मैं धीरे-धीरे जो परिवर्तन होते रहते है, उन्हें देखकर उस जीव के पिछले इतिहास को समझा जाता

है और दूसरे जीवो के साथ उसके सम्पर्क का भी पता लगता है।

अब जरा पहले प्रमाण की जांच की जाय।

धरती की तहों की जांच करने पर देखा गया है कि जगह-जगह धरती ऐसी है मानो तह पर तह सजा कर रखी गयी हो। साल-दर-साल नदियां नीची जमीन पर या समुद्र के तल पर एक-एक तह पाकी-मिट्टी जमाती जाती हैं। धीरे-धीरे ऊपरवाली तहे क्रमश. भारी होती जाती हैं, और नीचेवाली तहो के ऊपर दबाव बढ़ता जाता है। दबाव से नीचे की तहे सख्त पत्थरो का रूप धारण कर लेती है। जब तक तहे नरम रहती हैं, तब तक उनके ऊपर नाना प्रकार के जीव-जन्तुओं और पेड़-पौधों के निशान पडते है। निशान डालनेवाले इन जीव-जन्तुओं और पेड-पौधो के पथ-राये रूपों को ही फॉसिल कहते हैं। वैज्ञानिको ने मिट्टी की तहें खोद-खोदकर ऐसे अनेक फॉसिल बाहर निकाले हैं।

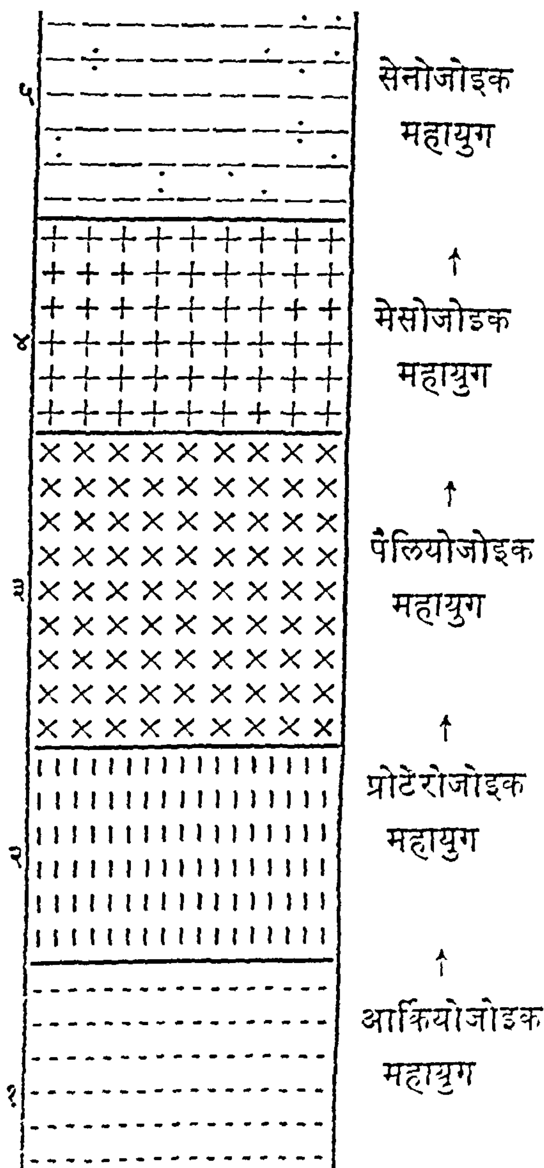
ये फासिल ही हमें बताते हैं कि धरती पर किस समय किस-किस जाति के जीव रहते थे।

पथरायी ठठरियो के प्रमाणो से डारविन के सिद्धान्तो को समझने के लिए भूतत्व-विद्या की कुछ बातों को जानना खास तौर से जरूरी है।

हमारी इस धरती का जन्म आज से करोडो बरस पहले हुआ था। धरती के जन्म के साथ ही उसकी गोद मे प्राणियो या उद्भिदों का जन्म नही हुआ था। उनके पैदा होने से बहुत पहले ही धरती न जाने कितनी उम्र काट चुकी थी।

पहले-पहल जब प्राणियों का जन्म हुआ, उस दिन से लेकर मनुष्य जाति के प्रकट होने के दिन तक जो करोड़ो-करोड़ वर्ष बीते है, उन्हे भूतत्व के पडितो ने पांच महायुगो मे बाट रखा है—मानो वे किसी मोटे ग्रथ के पाच खंड हो। जरा सा रटकर कंठस्थ कर लेने पर इन महायुगों के नाम याद हो जायेगे। नाम अगले पन्ने मे दिये हुए है। इन्हे पन्ने के नीचे से पढ़ते हुए ऊपर की ओर बढ़ना होगा।

आर्कियोजोइक और प्रोटेरोजोइक—इन दो प्रथम महायुगोवाली धरती की तहों से ज्यादा ठठरिया (फॉसिल) नही मिलती। क्यो? इसलिए कि इन दो महायुगो में भयानक भूकम्पो और अग्नि-उत्पातों ने धरती की सतहो को इतना उलट-पुलट दिया था कि तमाम पथरायी ठठरियां बरबाद हो गयी। फिर भी उनमे से जो पायी गयी हैं, वे सभी सीधे-सादे समुद्री जानवरो की है। वे केवल एक सेल (जीव-कोष) वाले



५
सेनोजोइक
महायुग
४
मेसोजोइक
महायुग
३
पैलियोजोइक
महायुग
२
प्रोटेरोजोइक
महायुग
१
आर्कियोजोइक
महायुग

ऐमिबा जातीय प्राणियो की, छोटे-छोटे समुद्री कीड़े-मकोडो की और सिवार-जातीय वनस्पति की है। उनमें न डाल है न पात, सिर्फ एक हरियाली का पिंड भर है। इन दोनो महायुगों में किसी थलचर जीव या किसी स्थलवासी पेड़-पौधे की पथरायी ठठरी नही मिलती। उनको देखकर यह अनुमान लगाना गलत न होगा कि सूखी धरती पर उन दिनों तक जीवन का कोलाहल अभी जागा नही था।

इन पहले दो युगों में जीवों की तादाद भी कम थी और उनकी विविधता-विचित्रता भी कम थी। उनकी देह एक ही सेल की बनी या बहुत थोड़े-से सेलों (जीव-कोषों) की बनी होती थी।

तीसरे महायुग का नाम है, पैलियोजोइक। इस महायुग को छ युगो मे बांटा गया है—ठीक वैसे ही, जैसे किसी ग्रंथ के एक ही खड मे कई-कई अध्याय होते है। इन छ. युगो के नाम है कैंब्रियन, ओर्डोविसियन, सिलूरियन, डैवोनियन, कार्बनिफेरस और ट्रियासिक। धरती की कैंब्रियन युगवाली तहो से वैज्ञानिको ने अनगिनत और विचित्र-विचित्र जलचर जीवो की पथराई ठठरियो को निकाला है। सिर्फ एक तरह की ठठरी नही मिली। और वह है रीढदार जीवो की।

उसके वाद युग पर युग बीतते गये और जीवो की तादाद वढ़ती गयी। एक के बाद एक, जटिल से जटिलतर गढ़नवाले जीव प्रकट होने लगे। पहले रीढ़दार जीव—मछलियो की जाति के—पैदा हुए। धीरे-धीरे अनेक जातियों के उद्भिदो से धरती भर उठी। पूरा कार्वनिफेरस युग स्थलवासी पेड-पौधो के आधिपत्य का युग है। सारी धरती घने जगलो से ढंग गयी। लेकिन इन जगलो मे अभी फूलों की वहार के दर्शन नही हुए थे। फूलवाले पौधो के आने मे अभी देर थी। ये ही पेड-पौधे मिट्टी मे दबकर वाद मे कोयला वन गये। इसीलिए कार्वनिफेरस युग को हम आसान वनाकर कोयला-युग भी कह सकते है।

मछली इससे पहले ही, सिलूरियन युग मे, पैदा हो चुकी थी। इस महायुग के अतिम युग, ट्रियासिक युग, के शुरू मे ही पहला थलचर जीव, मेढक पैदा हुआ। वेशक, मेढक को पूरा-पूरा थलचर नही कहा जा सकता। यह जलचर भी है और थलचर भी। अर्थात् उभयचर है। लेकिन पूरा-पूरा थलचर जीव भी उसी युग मे पैदा हो गया। यह जीव था सरीसृप। ये आदिम सरीसृप छिपकली, गिरगिट वगैरा थे।

चौथे महायुग को (जिसका भूतात्त्विक नाम

मेसोजोइक महायुग है), सरीसृपों का युग कहा जा सकता है। इस युग के सरीसृप आजकल की छिप-कलियो-गिरगिटो की तरह छोटे-मोटे निरीह जीव नही थे। उनके नाम जैसे जवड़ातोड़ है, रूप भी वैसे ही विकराल और दानवाकार थे। डाइनोसर, डिप्लो-डोकस, ब्राट्सरस आदि कुछ नाम इन्ही दानव सरीसृपो के हैं। पूरे मेसोजोइक महायुग में इन विकट आकार और अतिकाय सरीसृपो की ही इस पृथ्वी पर भरमार थी। इनमे से किसी-किसी की लम्बाई सौ-सौ फीट और वजन हजार-हजार मन था।

इन्ही सरीसृपो की एक शाखा अपने सामनेवाले दोनों पैरो को आसमान में मिलाने की कोशिश करती-करती चिड़िया बन गयी। चिडियो मे सबसे पुरानी जिस चिडिया की पथरायी ठठरी का पता लगा है, उसका नाम है आरकियोप्टेरिक्स। उसका नाम जैसा ऊबड-खावड है, रूप भी वैसा ही अजीब था। सरीसृपो जैसी पूछ, सरीसृपो के से दात, मगर चिडियो की तरह नुकीली चोच और चिडियों की तरह परोवाले (प्रपक्षो-वाले) डैने होते थे उसके।

इस महायुग के शुरू-शुरू में ही स्तन्यपायी जीव प्रकट हुए। भला स्तन्यपायी क्या चीज है? पहली

बात तो यह है कि इस जाति के जीवो की देह मे रोये या बाल होते हैं। दूसरी बात यह है कि ये जीव अंडे नही देते, इनके पेट से बच्चे पैदा होते है। बच्चे मा का दूध पीकर जीते और बढते है।

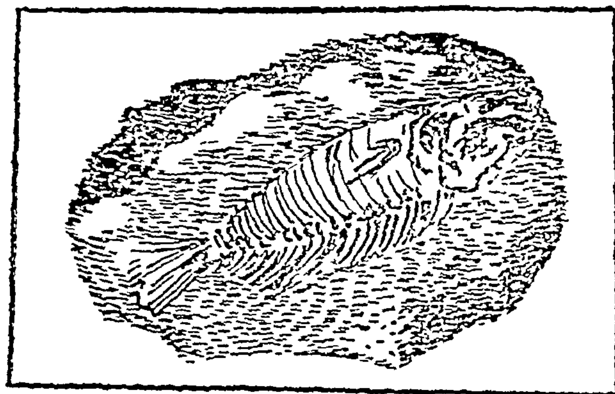
इस महायुग में फूलोवाले पेड-पौधे भी प्रकट हुए। इसके पहले पेड़-पौधों में फूल नही होते थे।

चौथा महायुग जब बीत चला और खतम होने को आया, तो अतिकाय सरीसृपो की हुकूमत का युग भी खतम होने को आया। ऐसा क्यो ? ऐसा इसलिए कि जिस गरम और नम आबहवा में डाइनोसर बढे और इतने दानवाकार हो गये, वह आबहवा ही बदल गयी और धरती पर बरफ का युग आ गया।

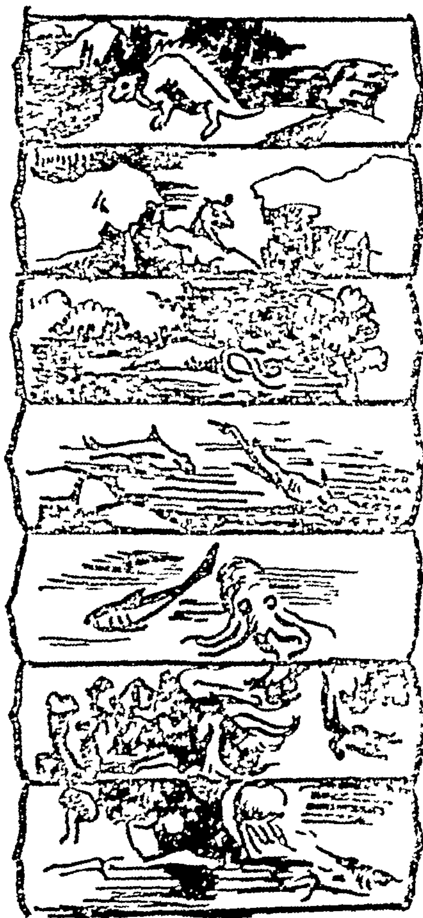
सबसे आखिरी महायुग, यानी सेनोजोइक महायुग को, हम स्तन्यपायी जीवों का महायुग कह सकते है। इस महायुग को पाच हिस्सों में बाटा गया है। इन पाच हिस्सों के नाम याद कर लेना ठीक रहेगा :

इयोसिन (Eocene)
ओलिगोसिन (Oligocene)
मियोसिन (Meocene)
प्लियोसिन (Pliocene)
प्लिस्टोसिन (Pleistocene)

सेनोजोइक महायुग के आरम्भ काल से ही धरती पर स्तन्यपायी जीवो का प्रताप बढ़ना शुरू हो गया था। धरती पर नाना जातियो के स्तन्यपायी जीव जन्म ले चुके थे और अपने-अपने वश को बढ़ाने में लगे थे। इतनी तेजी के साथ उनके फैलने के तीन कारण है। एक तो यह कि उनके शरीर का रक्त गरम होता है। दूसरा यह कि उनके शरीर के ऊपर घना रोआं होता है, जिससे वह कडी सरदी भी सह सकते है, उसके शिकार नही बन पाते। तीसरा यह कि वे अडे नही देते, बच्चे देते है। अडे जितने बरबाद होते है, उतने बच्चे बरबाद नही हो पाते। अपने विकसित शरीर को लेकर वे प्रकृति का सामना ज्यादा डटकर कर सकते है।

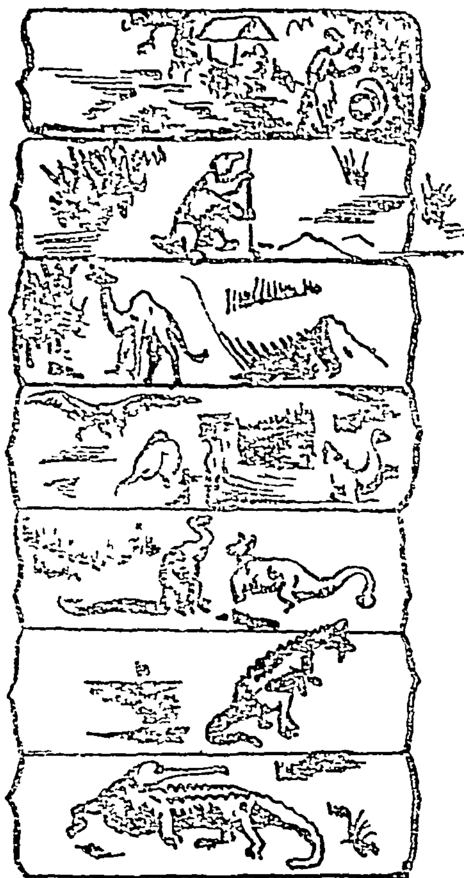


एक मछली की पथरायी ठठरी



जीवन के क्रमिक विकास की
कहानी के पहले सात अध्याय

(नीचे से ऊपर की ओर)



बाकी सात अध्याय

(क्रमिक विकास की

चोटी पर मनुष्य है)

इसी महायुग के शुरू के दिनो में जीवों में सबसे बुद्धिमान जीव, बदर, भी प्रकट हुआ। बदर की जाति से ही आज से सिर्फ तीन-चार लाख साल पहले, प्लिस्टोसिन युग में, मनुष्य-जाति का जन्म हुआ।

धरती की सबसे निचली तह की पथरायी ठठरियो से लेकर सबसे ऊपरी तह की पथरायी ठठरियों तक सभी को अगर सिलसिलेवार रखा जाय तो पृथ्वी के जीवों के क्रमिक विकास की एक बहुत साफ तसवीर उभर आयेगी। वह तसवीर कुछ इस तरह की होगी :

पहले दो महायुग : आदिम प्राण (जीवन)

ये जीव सीधे-सादे ढग के थे। जो जीव इस दुनिया मे सबसे पहले प्रकट हुए उनमे केवल एक ही सेल या जीव-कोष होता है। उनके बाद जो जीव दुनिया मे आये, उनमें कुछेक सेल या जीव-कोष होते है। ये जीव समुद्र के पानी मे बसते है। इनकी देह लिजलिजी होती है। शरीर मे कोई हड्डी नही होती। इसलिए उनकी पथरायी ठठरियो का मिलना बहुत मुश्किल है।

पेड़-पौधो के राज्य मे भी पहले सीधे-सादे ढंग की वनस्पति से ही सृष्टि के क्रम की शुरुआत हुई। पहले-पहले सेवार, कुकुरमुत्ते आदि की जातियो के घास-पात और पौधे प्रकट हुए। इस घास-पात मे और इन पेड़-पौधो में न फूल होते है, न बीज।

तीसरा महायुग : विचित्रता और प्रचुरता

जीव-जगत में समेरुक या रीढदार प्राणियों के सिवा और सभी प्राणियो का जन्म इस महायुग में हो चुका था। समुद्र के पानी में उन दिनो ट्राइलोबाइट नाम की एक जाति के जल जन्तुओ का खूब दबदबा था। उसके वाद पहले रीढ़दार जीव का जन्म हुआ। देखने मे ये जीव किसी डाक्टर की छुरियो की तरह लगते थे। पूरी रीढ उसमे अभी तैयार नही हो पायी थी। जहां रीढ होनी चाहिए थी, वहां रवड की तरह नरम हड्डी जैसे एक पदार्थ की माला होती थी। मछली से ये जीव वहुत मिलते-जुलते थे। इन्ही से विकसित हुई मछली। और मछली से आगे क्रमश बढते हुए—

उभयचर मेढक। और मेढकों से वढते-वढते फिर सरीसृप पैदा हुए।

वनस्पति जगत मे भी पहले पानी से निकलकर सूखे मे आने की कोशिश हुई। फिर थल-सेवार (काई) और कुकुरमुत्तो की जाति के अपुष्पक (विना फूलो-वाले) स्थलवासी पौधे पैदा हुए। उनमें फूल नही खिलते थे, फल नही लगते थे और वीज, पत्तो के ऊपर ही, वेपर्द पैदा होते थे। उन दिनो फर्न-जातीय पौधो की, अपुष्पक वनस्पति की, वहुतायत थी। अव कोयला-युग आया।

चौथा महायुग : डाइनोसरों का प्रताप

जीव-जगत में सरीसृपो के वंश वढे। डाइनोसरो का प्रताप वहुत तेज था। सरीसृपो की एक शाखा ने आसमान मे उडना सीख लिया था। ये उडाकू सरीसृप ही चिडियो के पुरखे थे। फिर स्तन्यपायी आये। इनके शरीर मे खूव वना रोआ होता है। ये अडे नही देते। इनके पेट मे वच्चे पैदा होते है। डाइनोसर हटे तो स्तन्यपायियो की तादाद वढी।

वनस्पति जगत मे सपुष्पक (फूलोंवाले) पौधे

पैदा हुए। इनमें फूल खिलते है। बीज नगे, बेपर्द, नही होते, ढके रहते है। फूल से फल लगते है। इन फूलवाले पौधों की वहुतायत और मुख्यता कायम हुई।

पांचवां महायुग : जिसकी अक्ल उसकी दुनिया

स्तन्यपायियो की तादाद वढ़ती गयी। अनेक जातियों के स्तन्यपायी पैदा हुए। सवसे बुद्धिमान स्तन्यपायी हुए वदर। इन बंदरों की ही एक सबसे बुद्धिमान शाखा से—आधुनिक प्लिस्टोसिन युग मे—मनुष्य ने जन्म लिया।

डारविन ने कहा था कि . "एकदम साधारण से श्रीगणेश करके सुदर से सुदर और अद्भुत से अद्भुत अनगिनत रूप क्रम-क्रम से विकसित होते गये।" पत्थरो पर उभरी इन तसवीरो के पीछे-पीछे क्रमिक विकास की जो धारा हमे मिलती है, उससे हम इसी नतीजे पर पहुचते हैं कि डारविन की वात का एक-एक अक्षर सच है।

"आदमी का अवतार" ("डिसेंट ऑफ मैन")

उभयचर मेढक। और मेढकों से बढ़ते-बढ़ते फिर सरीसृप पैदा हुए।

वनस्पति जगत में भी पहले पानी से निकलकर सूखे मे आने की कोशिश हुई। फिर थल-सेवार (काई) और कुकुरमुत्तों की जाति के अपुष्पक (बिना फूलों-वाले) स्थलवासी पौधे पैदा हुए। उनमे फूल नही खिलते थे, फल नही लगते थे और बीज, पत्तों के ऊपर ही, बेपर्द पैदा होते थे। उन दिनो फर्न-जातीय पौधो की, अपुष्पक वनस्पति की, बहुतायत थी। अब कोयला-युग आया।

चौथा महायुग : डाइनोसरों का प्रताप

जीव-जगत मे सरीसृपों के वंश बढ़े। डाइनोसरों का प्रताप बहुत तेज था। सरीसृपों की एक शाखा ने आसमान में उड़ना सीख लिया था। ये उड़ाकू सरीसृप ही चिड़ियो के पुरखे थे। फिर स्तन्यपायी आये। इनके शरीर मे खूब घना रोआं होता है। ये अडे नही देते। इनके पेट से बच्चे पैदा होते हैं। डाइनोसर हटे तो स्तन्यपायियो की तादाद बढ़ी।

वनस्पति जगत मे सपुष्पक (फूलोंवाले) पौधे

पैदा हुए। इनमे फूल खिलते हैं। बीज नंगे, बेपर्द, नही होते, ढके रहते हैं। फूल से फल लगते है। इन फूलवाले पौधों की बहुतायत और मुख्यता कायम हुई।

पांचवां महायुग : जिसकी अकल उसकी दुनिया

स्तन्यपायियो की तादाद बढ़ती गयी। अनेक जातियो के स्तन्यपायी पैदा हुए। सबसे बुद्धिमान स्तन्यपायी हुए बंदर। इन बंदरो की ही एक सबसे बुद्धिमान शाखा से—आधुनिक प्लिस्टोसिन युग मे—मनुष्य ने जन्म लिया।

डारविन ने कहा था कि : "एकदम साधारण से श्रीगणेश करके सुदर से सुदर और अद्भुत से अद्भुत अनगिनत रूप क्रम-क्रम से विकसित होते गये।" पत्थरो पर उभरी इन तसवीरो के पीछे-पीछे क्रमिक विकास की जो धारा हमे मिलती है, उससे हम इसी नतीजे पर पहुंचते हैं कि डारविन की बात का एक-एक अक्षर सच है।

"आदमी का अवतार" ("डिसेंट ऑफ मैन")

नाम को अपनी किताब मे डारविन ने यह सिद्ध किया है कि किस तरह वनमानुषो की ही एक शाखा बदलते-बदलते मनुष्य बन गयी। लेकिन सिर्फ मनुष्य ही क्यो ? आज हमे गैंडे, हाथी, ऊट और घोड़ो की जो असंख्य पथरायी ठठरियां मिलती है, उन्हे निचले स्तरों से ऊपरी स्तरो की ओर सिलसिलेवार सजाकर रख दीजिये तो आप साफ-साफ समझ लेगे कि बहुत पहले वे कुछ और ही तरह के होते थे। बाद मे बदलते-बदलते ही उन्होंने अपना वर्तमान रूप धारण किया।

मिसाल के लिए घोडे को ले लिया जाय। घोड़े की जातिवाला पहले का जानवर शुरू से ही आज की तरह एक खुरवाला, लम्बे पैरो और लम्बी गरदनवाला स्तन्यपायी नही था। उसके दात भी आज की तरह फांकदार और मजबूत नही होते थे। घोड़े के पुरखे देखने में लोमड़ी की तहर होते थे। लम्बाई बहुत हुई तो एक फुट। अगले पैरो मे चार-चार और पिछले पैरो मे तीन-तीन खुर। आज-कल के घोडे के पैर का निचला हिस्सा एक ही हड्डी का बना होता है। लेकिन उसके पुरखे के पैर के निचले हिस्से में दो-दो हड्डिया होती थी। उस अजीब घोडे का नाम था—योहिपस।

उसके बाद क्या तब्दीलिया हुई ?

उसके बाद चारों पैरों मे तीन-तीन खुर रह गये। बीचवाले खुर आकार में बड़े होते थे। इसलिए शरीर का बोझ उन्ही को ढोना पड़ता था। लेकिन चलते वक्त किनारेवाले खुर भी धरती को छूते थे। दांतो की फांके, जो पहले साफ नही थीं, अब साफ नजर आने लगी। फाके होने से घास-पुआल वगैरा चबाने मे सहूलियत हो गयी। इस जाति के घोड़ो का नाम था, मेसोहिपस।

उसके बाद ?

उसके बाद छोटे खुर धीरे-धीरे इतने छोटे हो गये कि मिट्टी भी न छू पाते। पैर की दोनों निचली हड्डियां मिलकर एक हो गयी। आज-कल के घोड़े से यह जानवर बहुत-कुछ मिलता-जुलता था; सिर्फ चेहरा छोटा था। इस जाति के जानवर प्रोटोहिपस कहलाते थे। प्रोटोहिपस ही आज-कल के घोड़े बन गये हैं।

इस तरह हम देखते है कि घोड़े की सृष्टि भी एक ही बार में नही हुई।

आदमी की सृष्टि भी एक बार मैं नही हुई। रीढ़दार जीवो की सबसे ऊपरी पैड़ी पर है आदमी। सबसे निचली पैडी पर है मछली। अवस्थाओं के हेर-फेर से मछली ही मेढक बन गयी। मेढको की एक

शाखा बदलते-बदलते सरीसृप बनी। स्तन्यपायी जीव भी सरीसृपों की ही एक शाखा से आये है। स्तन्यपायी जीवो की एक जाति मे वनमानुष हुए जो मनुष्यों के पुरखे है।

यह तो रहे पथरायी ठठरियों के प्रमाण से प्राप्त ऐतिहासिक तथ्य।

अब दूसरे सबूत की भी जाच की जाय।

अगर भिन्न-भिन्न जातियो के जीव-जन्तुओं के शरीर के हिस्सों की तुलना की जाय, तो समझ मे आ जाता है कि किस जाति के जीव किस तरह बदलते हैं। मेढक, कछुए, चिड़िया, घोड़े, ह्वेल, चमगादड़ और मनुष्य—इन सब मे कही कोई समानता दीखती है? कोई समानता नही दीखती। लेकिन मेढको और कछुओं के पैरों मे, चिड़ियो के डैनों और घोड़ों के दोनो अगले पैरो मे, ह्वेल की पंखियो, चिमगादड के डैनो और आदमी के हाथो की तुलना अगर की जाय तो अच्छी तरह समझ में आ जायगा कि इन सबकी गढन मे कितनी समानता है।

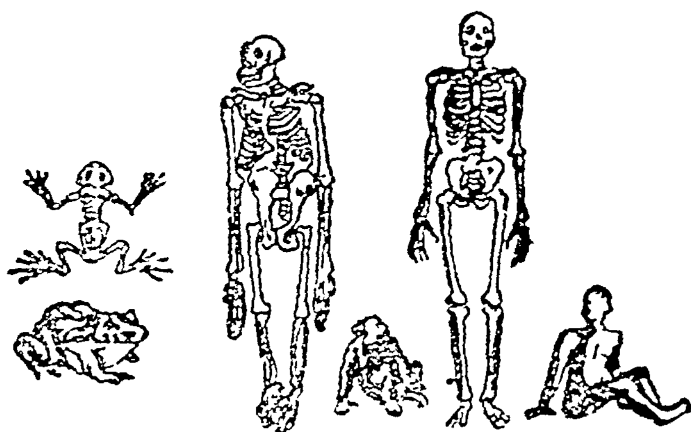
ठीक इसी तरह अगर ऊपरी खोल को उघार कर फेक दिया जाय तो मेढक, बदर और मनुष्य की ठठरियो की तुलना करने पर हैरान रह जाना पडेगा।

इस तरह का एक और सबूत लोप हो गये अगों का है।

मनुष्य स्तन्यपायी जीवो की ही एक जाति से पैदा हुआ है। लेकिन स्तन्यपायी जानवरो के होती है पूछ। सो आदमी के पूछ नही होती। कहां गयी यह पूछ ? पूछ थी तो आदमी के भी। अब झड़ गयी। क्या सबूत ? सबूत रह गया है रीढ़ के छोर पर बचे हड्डी के एक टुकड़े के रूप मे। बदर के शरीर मे भी रीढ़ के छोर पर ठीक उसी जगह पर हड्डी का एक टुकड़ा होता है और बंदर की पूछ हड्डी के उसी टुकड़े से निकली होती है।

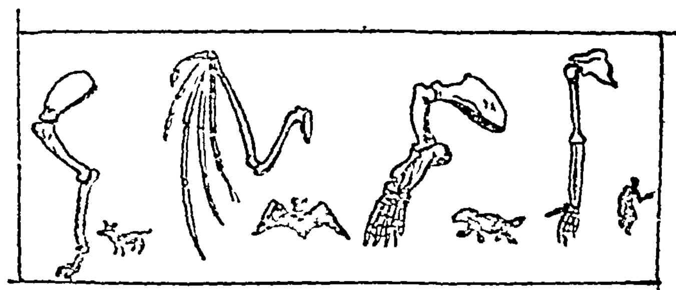
एक और उदाहरण है—ह्वेल मछली के पैरों का। ह्वेल-मछली पहले चौपाया, स्तन्यपायी जानवर था। पानी मे रहने की जरूरत से मजबूर होकर उसने अपने दोनों अगले पैरों को पखियो के रूप मे वदल लिया है। लेकिन पिछले दोनो पैर ? वे अब नही रहे। कहां गये वे ? जहां दोनों पैर होने चाहिए थे, वहां पर काटकर देखने से पता चलता है कि अव दो छोटी-छोटी हड्डिया शेष रह गयी है। इसीसे यह सबूत मिलता है कि ह्वेल के भी पैर होते थे। अवस्थाओं के हेर-फेर से पैर झड गये।

लोप हो गये अंग यह बता देते है कि आज भले ही उन अगों के चिन्ह मात्र ही बच रहे हों, लेकिन एक दिन ऐसा भी था जब ये अग पूर्ण विकसित रूप में मौजूद थे और काम मे आते थे। आज जिन जन्तुओ के शरीर से उन अगो का लोप हो गया है, वे जन्तु उन जन्तुओं के वशधर है जिनके शरीर मे किसी जमाने में ये अंग भी मौजूद थे, और लोप नही हुए थे।



मेढक, गुरिल्ला और आदमी के ककालो की गठन मे कोई विशेप अन्तर नही दीखता। सामने की तसवीर में यह देखा जा सकता है कि चार तरह के जानवरो की हड्डियो के ढाचे वहुत कुछ एक-जैसे है।

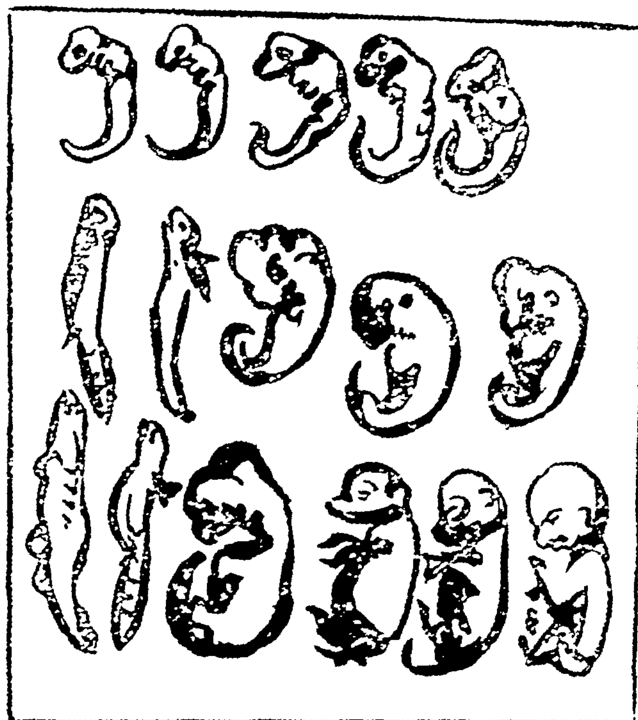
पैदा होने के पहले की अवस्थाओं मे मछली, मुर्गी या वदर के बच्चो से आदमी के बच्चो की गढ़न में कोई ज्यादा अन्तर नही होता। इससे क्या सिद्ध होता है ?



अब तीसरे प्रमाण को भी समझ लिया जाय।

जीव जब मां के पेट में होते है, भ्रूण (गर्भावस्था) के रूप में रहते है। उस समय की अवस्था के चार जातियो के भ्रूणो (गर्भ के बच्चो) को आसपास सजाकर रख दिया जाय तो वताना कठिन होगा कि कौन सा भ्रूण किस जन्तु का है, कि किस भ्रूण से मछली पैदा होगी, किससे मुर्गी, किससे वंदर और किससे आदमी। शुरू मे तो देखने मे वे वहुत समान रूप लगते है। जिन लोगो ने आदमी के गर्भ-रूपो की जांच-पडताल की है, उन्होने देखा है कि शुरू-शुरू में आदमी का हृदय-यत्र भी मछली की तरह ही दो

भागो मे बंटा रहता है उसके बाद वही हृदय-यंत्र मेढक की तरह तीन भागो में बट जाता है। सरीसृपो के हृदय-तंत्र भी इसी तरह से बटते हैं। मछली के



कनखुरो-कल्लो के भीतर जिस तरह का गढा होता है, वैसा ही गढा आदमी के गर्भ-रूप के कधों के दोनो ओर भी देखा जा सकता है। यह सब-कुछ दूसरे स्तन्यपायी जन्तुओ के गर्भ रूपो में भी पाया जाता है। इन सारी बातो से क्या साबित होता है ?

इन बातो से साबित होता है यह कि सूखी धरती पर विचरनेवाले स्तन्यपायी कभी पानी मे बसनेवाले जीव थे, या, इसी बात को यो कह सकते है कि जल-चरों की एक शाखा क्रमश· बदलते-बदलते एक दिन सूखी धरती पर चलनेवाले स्तन्यपायी जन्तुओ की जाति बन गयी।

इन कुछेक पन्नो के अन्दर डारविन के क्रमिक-विकासवाले सिद्धान्त की चर्चा बहुत सक्षेप मे की गयी है। मोटा-मोटी तौर पर क्या बात तय पायी गयी ?

पृथ्वी मे परिवर्तन होते है, हुए है, और हो रहे है। पृथ्वी-निवासी जीव-जन्तुओ और पेड-पौधो मे परिवर्तन होते है। पहले भी हुए है, आज भी हो रहे है और आगे भी होते रहेगे। कारण यह है कि जीवन का स्वभाव ही है बदलते रहना।

आदिम युग मे कुछ सीधे-सादे ढग के जीव और कुछ सीधे-सादे ढग के उद्‌भिद ही थे। बदलते-बदलते वे जटिल हो गये। क्रमश. नये-नये गुण और अलग-अलग विशेषताए हासिल करके बहुतर, विचित्रतर और उन्नततर जीव और पेड-पौधे इस पृथ्वी पर प्रकट होते गये। इस उन्नति की सबसे ऊची चोटी पर जो जीव है, वह है मनुष्य।

नौ

डारविन बता गये है कि परिवर्तन ही प्रकृति का नियम है।

उनसे यदि हम यह सवाल पूछते कि :

युगो-युगो तक थोडा-थोडा करके प्रकृति जीव-देहो मे जो परिवर्तन ले आयी है, जिन गुणो को विकसित किया है, उन परिवर्तनो को मनुष्य प्रयत्न करके ला सकता है या नही ? उन गुणो को विकसित कर सकता है या नही ?

क्या जवाब देते वह ? वह कहते कि जीवो के शरीर के अन्दर जो भेद आते है, जो विशेषताए जाहिर होती है, जिनके बूते पर जीव जीवित रह पाने के सघर्ष मे विजयी होते है, जिनसे जीव-देहो के नये-नये रूप गठित होते है—ये सब अकस्मात ही होते है, सयोग मे ही होते है, इनके कारण जाने नही जा सकते। यही है डारविन के सिद्धान्त की कमजोरी।

लेकिन इस कमजोरी को बताने का यह मतलब हरगिज नही कि हम डारविन की चिरस्मरणीय कीर्ति को रत्ती भर भी कम करके देखने की कोशिश कर रहे है। मनुष्य के ज्ञान भडार मे वह जो कुछ दे गये है, उसका मोल हम कभी भी नही चुका पायेगे !

विज्ञान की सिर्फ एक शाखा मे ही नही—जीव-विद्या या 'बायोलौजी' के क्षेत्र मे ही नही—मनुष्य के पूरे चितन-जगत मे डारविन एक प्रचंड उथल-पुथल शुरू कर गये है। दर्शन-चितन मे, समाजशास्त्रीय-चितन मे और अर्थनीतिक-चितन मे भी डारविन एक आधी सी उठा गये है। उस आधी मे पुरानी गलत-सलत धारणाए सड़े पत्तो की तरह उड गयी। मनुष्य सत्य को पहचानने का रास्ता देखने लगा, विज्ञान के सत्य को, जीवन के सत्य को पहचानने का रास्ता। उस सत्य को पहचानने का, जिसे पहचानकर मनुष्य और भी बडा हो सकेगा।

लेकिन हमारे सवाल का क्या हुआ ? वह तो रह ही गया।

लो, उस सवाल का जवाब भी मिल गया। कागजी जवाब नही। बिलकुल सच्चा जवाब।

जवाब क्या है ? क्या कोई ऐसा जवाब है जिसे

सुनकर मनुष्य कहलाने मे हमारी छाती गर्व से फूल उठेगी ?

हां, गर्व करने की बात जरूर है। जिन्होंने जवाब दिया, उन्होने कहा कि .

> हम इस आशा मे प्रकृति का मुह ताकते नही रह सकते कि प्रकृति हमे देगी। हमें तो, जो हम चाहते है, वह प्रकृति के हाथो से छीनना होगा।

प्रकृति के हाथो से छीनना होगा। अर्थात् प्रकृति मे जो नही है, वह लाना होगा। कैसे ? किस बूते पर ?

अगर हम यह समझ सके कि प्रकृति मे जो प्रकार-भेद होते है, उनका कारण क्या है, उसमें जो अतर आते रहते है वे ठीक किस तरह से आते है—जो डारविन समझा नही सके—तो हम अपनी मन-चाही चीजे प्रकृति के हाथो से छीन ले सकते है, प्रकृति मे जो परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे होता है, उसे दो-चार या दस-पांच बरसो मे ही घटित कर सकते है।

परिवर्तन के-कारण क्या है ?

कारण है चहु ओर की अवस्था। वातावरण। वातावरण के साथ जीव-देह का घनिष्ठ सम्बंध रहता

है। जीव-देह अपने को ठोक-पीटकर वातावरण के अनुकूल बना लिया करती है। ऐसा न करे तो उसके पास और चारा ही क्या है। अपने वातावरण के अन्दर से ही तो वह अपने जीते रहने के लिए, अपने पोषण के लिए, सामग्री जुटाती है! वातावरण उसे जो-जो सामग्रियां, जो-जो उपकरण देता है, वह उन्ही को लेकर तो जियेगी न ?

मान लिया कि एक उद्भिद है। उसका वातावरण क्या होता है ? जमीन की गढन, जमीन और हवा का तापमान, हवा मे कारबन-डायक्साइड की मौजूदगी, हवा के वहने की गति और रोशनी। ये ही वे चीजे है जिन्हे मिलाकर उसका वातावरण बनता है।

एक उदाहरण से इस बात को अच्छी तरह समझ लिया जाय।

भारत मे रुई पैदा होती है। लेकिन इस रुई के तार होते है छोटे। छोटे तार से उमदा कपडे नही वनते। उमदा कपडे वनाने के लिए विदेशो से लम्बे तार की रुई का आयात करना पडता है।

अव अगर भारत मे वनस्पति-शास्त्र का कोई पंडित कहे कि मै देश के इस चितनीय अभाव को दूर

कर दूगा, भारत मैं लम्बे तार की रुई की फसल उगा-ऊगा, तो क्या हो ? पाच सौ वरस पहले ऐसा कहने वाले को शायद पागलखाने की हवा खानी पडती, या धर्मद्रोही ठहरा कर नजरबद कर दिया जाता।

लेकिन आज ? आज उसकी वात मुनकर सभी धन्य-धन्य कह उठेगे। उसे देश का सपूत मानकर उस पर श्रद्धा के फूल चढायेगे।

यह कैसे सभव होगा ? पहले यह समझ लेना होगा कि वड़े तार की रुई के लिए वातावरण कैसा चाहिए। वैसा वातावरण तैयार करते ही धीरे-धीरे कुछ वरसो मे भारत मे वड़े तार की रुई पैदा की जाने लगेगी।

यह चडूखाने की गप्प नही है। एक महापुरुष ने साठ साल तक अविश्वासियो की आखो मे उगली डाल-डालकर एक-एक वात सिद्ध कर दी है। वह तो आज नही रहे, लेकिन उनके शिष्य इस वात को अनाज के खेतो और फलो के वड़े-वड़े उद्यानो मे रोज प्रमाणित कर रहे है।

जहा कभी अनाज नही उगा, उन वरफीले देशो मे वे गरम देशो के अच्छी जाति के गेहू उगा रहे है।

जहां कभी चाय नही हुई, और न कभी किसी को यह विश्वास हो सकता था कि वहा चाय हो सकती है, उन जगहो में उन्होने चाय के बागान खड़े कर दिये है।

मनुष्य अब बैठा-बैठा प्रकृति का मुह नही देखता रह सकेगा। मनुष्य प्रकृति के हाथ से जो चाहेगा, छीन लेगा।

डारविन की कहानी कहने के लिए जितने पन्ने नियत थे, उनका यही आखिरी पन्ना है।

डारविन की कहानी खतम करने से पहले हम सिर्फ उस आदिमी का नाम बता देना चाहते है, जिसके कामो से डारविन अमर हो उठे है—

उनका नाम है मिचुरिन।

ईवान व्लादिमिरोविच मिचुरिन।



संक्षिप्त तिथि-पत्रिका

चार्ल्स डारविन। रॉबर्ट वारिंग डारविन के द्वितीय पुत्र।

जन्म : १२ फरवरी, १८०९।

जन्मस्थान · श्रुसबेरी इगलैंड।

१८२५ डाक्टरी पढने के लिए एडिनबरा विश्वविद्यालय में दाखिल हुए।

१८२८. पादरी बनने के लिए कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय मे दाखिल हुए।

दिसम्बर १८३१ से अक्तूबर १८३६ : 'बिगुल' नामक जहाज पर विश्व-पर्यटन।

१८३८-१८४१ : तीन साल तक जियॉलॉजिकल सोसायटी के मत्री।

१८३९ : विवाह।

. फिटजरॉय के साथ मिलकर "जरनल आफ रिसर्चेज" (शोध-पत्रिका) का प्रकाशन।

१८४४. अग्नेय द्वीप सम्बन्धी पुस्तक का प्रकाशन।

१८४५ "जरनल ऑफ रिसर्चेज" का दूसरा संस्करण स्वतंत्र रूप से प्रकाशित करने लगे।

१८४६. "दक्षिणी अमरीका का भूतात्त्विक पर्यवेक्षण" नाम की पुस्तक प्रकाशित।

१८५४. सेरिपिड नामक समुद्री जीव सम्बन्धी पुस्तक प्रकाशित।

१८५९ "ओरिजिन ऑफ स्पिशीज" का प्रकाशन।

१८६२ · "फर्टिलाइजेशन ऑफ ऑरकिड्स" का प्रकाशन।

१८६८ . "वैरियेशन ऑफ ऐनिमल्स ऐंड प्लांट्स अंडर डोमेस्टिकेशन" का प्रकाशन।

१८७१ "डिसेंट ऑफ मैन" (आदमी का अवतार) का प्रकाशन।

१८७२ : "एक्सप्रेशन ऑफ इमोशन इन मेन ऐंड एनिमल्स" का प्रकाशन।

१८७५ : "इनसेक्टिवोरस प्लांट्स" (कीटभोजी पौधे) का प्रकाशन।

१८७७ . "डिफरेंट फार्म्स ऑफ फ्लावर्स" (फूल के विविध रूप) का प्रकाशन।

१८७९ · "लाइफ ऑफ इराजमस डारविन" (इराजमस डारविन की जीवनी) का प्रकाशन।

१८८० : "पावर ऑफ मूवमेंट इन प्लांट्स" (पौधों मे गति-शक्ति) का प्रकाशन।

डारविन के पांच बेटे और दो बेटिया थी। बेटो मे सर जार्ज हावर्ड ज्योतिर्विज्ञानी और सर फ्रांसिस उद्भिद-विज्ञानी के रूप मे विख्यात हुए।

मृत्यु : १९ अप्रैल, १८८२।

